अंक : ५४ संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषिप्रसाद

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ७
अंक : ५४
९ जून १९९७

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८० ००५ ने विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाखली, अमदावाद, पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद, भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

लोग क्यों दुःखी हैं ? क्योंकि अज्ञान के कारण वे अपना सत्य स्वरूप भूल गये हैं और अन्य लोग जैसा कहते हैं वैसा ही अपने को मान बैठते हैं। यह दुःख तब तक दूर नहीं होगा जब तक मनुष्य आत्म-साक्षात्कार नहीं कर लेगा।

प्रस्तुत है...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गीता में ज्ञान और विज्ञान

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचन ॥

'ज्ञान-विज्ञान से जिसका अन्तःकरण तृप्त है, जो अचल स्थित है, जिसने इन्द्रियादि को जीता है और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण समान है वह योगी योगयुक्त है- ऐसा कहा जाता है ।' (भगवद्गीता : ६.८)

शास्त्र में बताये गये पदार्थों का कथन अच्छी तरह समझना यह ज्ञान है और उस ज्ञान का अनुभव करना यह विज्ञान है । ऐसे ज्ञान और विज्ञान से जिसका अन्तःकरण तृप्त है वह तृप्तात्मा कूटस्थ और अचल होता है । वह किसी भी परिस्थिति में चलित नहीं होता । विकार के साधन सामने होते हुए भी वह विकारशून्य ही रहता है । वह जितेन्द्रिय भी होता है अर्थात् उसकी इन्द्रियाँ वश में रहनेवाली होती हैं जिससे वह समाहितचित्त कहाता है । उसके लिए मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण एक समान ही हैं ।

श्रीमद्भगवद्गीता के छट्ठे अध्याय के आठवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को निमित्त करके हम सबको ज्ञान की महिमा बताते हुए कहते हैं कि एक बार जिसका चित्त ज्ञान और विज्ञान से तृप्त हो गया फिर उसके लिए करना, जानना, पाना कुछ भी बाकी नहीं रहता... और उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए कहीं बाहर प्रयत्न करने की कोई जरूरत नहीं । आपके अंदर ही वह अनमोल खजाना, ज्ञान का महासागर लहरा रहा है । फिर क्यों मिलता नहीं ? क्योंकि आप अंदर खोजने के बजाय बाहर खोजने में ही जिन्दगी पूरी कर देते हो ।

आपके अंदर ही वह अनमोल खजाना, ज्ञान का महासागर लहरा रहा है । फिर क्यों मिलता नहीं ? क्योंकि आप अंदर खोजने के बजाय बाहर खोजने में ही जिंदगी पूरी कर देते हो ।

एक सेठ कलकत्ता से मुंबई जाने के लिए ट्रेन में बैठे । उनके पास पचास हजार रूपये थे । ट्रेन में जेबकतरे तो होते ही हैं । वे लोग सब पता भी रखते हैं कि किसके पास कितना माल हो सकता है । जेबकतरों का भी अपना नियम होता है कि अमुक स्टेशन तक जेब काट ली तो काट ली नहीं तो आगे के स्टेशन पर दूसरे का इलाका आ जाता है ।

कलकत्ता से गाड़ी चली तब एक ठग उस सेठ के पीछे लग गया और टिकट लेकर सेठ के पास बैठ गया । वह जेबकतरा सेठ के साथ अच्छी तरह बातें करने लगा तथा सेठ का छोटा-मोटा काम भी करने लगा । सेठ के लिए शरबत, पानी, नाश्ता-भोजन वगैरह ले आता । छोटे-मोटे काम करके उसने सेठ को प्रसन्न करने का प्रयत्न शुरू कर दिया । वह ध्यान रखता कि सेठ पैसे कहाँ से निकालते हैं और कहाँ रखते हैं । परन्तु उसकी समझ में नहीं आता था कि सेठ रूपये गिनते तो हैं पर रखते कहाँ हैं ? ठग भी कुछ कम नहीं था । सेठ जब सो जाते तब उनका सामान ढूँढने लगता । सेठ की अटैची खोलता, इधर-उधर सब जगह ढूँढ लेता । अंत में उसने सेठ को क्लोरोफार्म सूँघाकर उनके प्रत्येक सामान की जाँच कर ली किन्तु धन का कहीं पता न लगा ।

सेठ भी कुछ कम नहीं थे । उनको पता था कि यह ठग मेरे पीछे लगा हुआ है । वे ठग को कुछ-न-कुछ काम सौंपकर उसे नीचे उतारते और उसके

बिस्तर में अपने रूपये रख देते थे। फिर कुछ काम सौंपकर नीचे उतारते और उसीके बिस्तर में से रूपये निकालकर अपने पास रख लेते और ठग के सामने गिनने लगते। इस तरह उस ठग को भी सेठ ने ठग लिया था।

ऐसा करते-करते उस ठग का इलाका पूरा हुआ तो दूसरा ठग सेठ के पीछे लग गया। उसको भी कुछ नहीं मिला। फिर तीसरा ठग आया। ऐसे एक के बाद एक ठग सेठ को बेचता गया और ऐसे ही बिकते हुए, ठगों को ठगते हुए सेठ मुंबई पहुँच गये। जब सेठ उतरकर चलने लगे तो उस आखिरी ठग ने पैर पकड़ लिए और कहा : ''सेठजी ! आप कलकत्ते से बिकते चले आ रहे हैं। उन ठगों को भी मुझे पैसे देने पड़ेंगे। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि कृपया यह बता दीजिए कि आप रूपये रखते कहाँ थे ?''

''मैं तेरे ही सामान में मेरे सारे रूपये रख देता था जिससे मैं तो आराम की नींद लेता और तू मेरे सामान में वे रूपये ढूँढता रहता था।''

सेठ : ''भाई ! तू मेरा बिस्तर खोजता था, मेरी अटैची खोलता था, मेरा सामान देखता था, उस समय तूने जरा-सा ख्याल करके तेरा ही बिस्तर देख लिया होता तो वे रूपये तुझे मिल जाते। जब तू चीज-वस्तुएँ लेने जाता तब मैं तेरे ही सामान में मेरे सारे रूपये रख देता था जिससे मैं तो आराम की नींद लेता और तू मेरे सामान में रूपये ढूँढता रहता था।''

बस, उसी ठग की तरह हम भी सुखस्वरूप, आनंदस्वरूप परमात्मा को बाहर की विषय-विकारों से भरी दुनिया में ढूँढते रहते हैं। लेकिन विषयों में सुख नहीं है, बाहर की संयोगजन्य परिस्थितियों में आनंद नहीं है। आनंद तो आपके अपने अंदर ही है। आपकी ही चेतना से सारा व्यवहार होता है। आप ही आपके शरीर के कर्त्ता-भोक्ता और महेश्वर हो।

कभी आपको ऐसा महसूस होता है कि यह दायाँ हाथ मेरा है और बायाँ हाथ पराया है ? अनामिका उँगली मेरी है और कनिष्ठिका दूसरे की है ? दोनों पैरों की दस और दोनों हाथों की दस- इस तरह कुल मिलाकर बीसों उँगलियाँ अपनी ही लगती हैं न ? अरे ! पूरे शरीर में कितने ही रोमकूप हैं... कितनी ही इन्द्रियाँ हैं। आपका व्यवहार भी उन सबके साथ अलग-अलग है। फिर भी उनमें कभी अलगाव महसूस होता है क्या ? 'मैं' यानी सब मिल-जुलकर 'मैं'। तो जैसे इस पूरे शरीर को आप बिल्कुल 'मैं' मानते हो ऐसे ही आपकी चेतना का आपको पता लग जाय तो सारे ब्रह्माण्ड में जो फैला हुआ चैतन्य है, उसमें आपकी 'मैं' व्यापक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जायेगी। फिर आपको भय कहाँ ? चिंता कहाँ ? आपके लिए कुछ ग्राह्य और त्याज्य कहाँ ? अच्छा कहाँ और बुरा कहाँ ? सब 'मैं' हो जायेगा। जब सब अपना आपा ही हो गया तो फिर जन्म कहाँ और मृत्यु कहाँ ? फिर तो केवल शेष रहेगी ब्रह्मानंद की मस्ती, निजानंद की मस्ती... ॐ... ॐ... ॐ...

आपकी चेतना का आपको पता लग जाय तो सारे ब्रह्माण्ड में जो फैला हुआ चैतन्य है, उसमें आपकी 'मैं' प्रतिष्ठित हो जायेगी। जब आपकी 'मैं' व्यापक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जायेगी तो फिर आपको भय कहाँ ? शोक कहाँ ? चिंता कहाँ ?

गुरु का सान्निध्य प्रबल आध्यात्मिक स्पन्दनों के द्वारा शिष्य को ऊँची भूमिका पर ले जाता है और उसे प्रेरणा देता है। गुरु की महिमा शिष्य की स्थूल प्रकृति का परिवर्तन करने में निहित है। केवल गुरु ही अपने योग्य शिष्य को दिव्य प्रकाश दिखा सकते हैं। – स्वामी शिवानंदजी

परिस्थिति और जीवन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

परमात्म-प्राप्ति अत्यंत सरल है किन्तु गलत अभ्यास के कारण कठिन लग रही है । जब तक हमें यह बात समझ में नहीं आती कि परिस्थिति जीवन नहीं है और जीवन परिस्थिति नहीं है तब तक परमपद की कुँजी नहीं मिलती ।

जीवन उसे कहा जाता है जिसे मौत छू तक न सके, जहाँ कोई भी दुःख, क्लेश और मुसीबत फटक तक न सके । परिस्थिति को मौत छू सकती है, जीवन को नहीं, किन्तु हम परिस्थिति को ही जीवन मानने की गल्ती कर बैठते हैं, इसीलिए परिस्थिति से बँध जाते हैं । परिस्थितियों का बँधन ही हमें भयभीत कर देता है, आसक्त कर देता है और परेशान कर देता है । यदि इन दोनों का भेद समझमें आ जाये तो सब दुःखों की निवृत्ति हो जाये ।

अगर आप प्रत्यक्ष रूप से यह जान लो कि परिस्थिति जीवन नहीं है तो कोई भी परिस्थिति आपको प्रभावित नहीं कर सकती । साथ में यह लाभ भी होगा कि आपका दुःख का भय चला जायेगा । चाहे कैसी भी परिस्थिति आये, किन्तु यदि हमारी यह समझ बनी रहे कि जो अवस्था आयी है वह एक दिन जायेगी अवश्य, न सुखद परिस्थिति सदा टिकती है न दुःखद परिस्थिति सदा टिकती है । इस ज्ञान से सुखद परिस्थिति में आसक्ति नहीं होगी और दुःखद परिस्थिति से भय नहीं होगा । भय और आसक्ति का अभाव आपके चित्त को निर्दोष, निर्द्वन्द और निरहंकारी बना देगा जिससे चित्त को चैतन्यस्वरूप में प्रतिष्ठित होने का अवसर मिलेगा और चैतन्यस्वरूप में स्थिति होने से सब दुःख सदा के लिए दूर हो जायेंगे ।

भय और आसक्ति का अभाव आपके चित्त को निर्दोष, निर्द्वन्द्व और निरहंकारी बना देगा जिससे चित्त को चैतन्यस्वरूप में प्रतिष्ठित होने का अवसर मिलेगा और चैतन्यस्वरूप में स्थिति होने से सब दुःख सदा के लिए दूर हो जायेंगे ।

किसीकी सुखद परिस्थिति देखकर आप यह इच्छा न करने लगना कि अमुक व्यक्ति के पास बढ़िया गाड़ी-बँगला है, मेरे पास भी हो जाये । नहीं... नहीं... वरन् आप यह देखना कि जिसके पास यह सब है, क्या वह पूर्ण सुखी है ? ऐहिक सुख-सुविधा होने से ही कोई मनुष्य पूर्ण सुखी नहीं हो जाता । किन्तु इसका मतलब यह भी नहीं कि आप आलसी हो जाओ, निराशावादी हो जाओ या पलायनवादी हो जाओ, वरन् आप भी परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की कोशिश करो । लेकिन भीतर से समझना चाहिए कि यह परिस्थिति है, आने-जानेवाली है ।

बाल्यकाल की परिस्थिति आयी और गयी । बाल्यकाल के खिलौने, मित्र आदि बदल गये किन्तु उनको देखनेवाला साक्षी, आत्मा नहीं बदला, वही जीवन है । परिस्थिति और शरीर जीवन नहीं है । जीवन तो वह है जिस पर मृत्यु की परछाई तक नहीं पड़ सकती । ऐसे ही बाल्यकाल से बाहर निकले तो यौवन आया । यौवन बदला तो बुढ़ापा आता है । बुढ़ापे से बाहर निकले तो मृत्यु आती है और मृत्यु से भी बाहर निकले तो दूसरा नया जन्म आता है । इस प्रकार इस शरीर की अवस्थाएँ तो कई बदलती रहती हैं किन्तु उनको देखनेवाला दृष्टा एक का एक है और वही तुम हो ।

जब तक इस बात का ज्ञान नहीं होगा, तब तक बदलती परिस्थितियों के साथ आप अपने को भी बदलता हुआ मानते रहोगे । जब तक परिस्थितियों और जीवन

में अंतर नहीं कर पाओगे, तब तक किसी न किसी परिस्थिति की आकांक्षा करते रहोगे । कुँआरे सोचते हैं सगाई में सुख है, सगाईवाला सोचता है शादी में सुख है, शादीवाला सोचता है कि बच्चे में सुख है । पति सोचता है कि पत्नी कहने में चले तो सुखी होऊँ और पत्नी सोचती है कि पति कहने में चले तो सुखी होऊँ परन्तु जरा देखो कि जो पति-पत्नी एक-दूसरे के कहने में चलते हैं वे सचमुच में सुखी हैं क्या ? जिनको बच्चे हैं वे सचमुच में सुखी हैं क्या ? मुक्त हैं क्या ? गहराई से देखोगे तो पता चलेगा कि वे भी सुखी नहीं हैं । किसी भी परिस्थिति में सच्चा सुख, पूर्ण स्थिरता या पूर्ण जीवन दृष्टिगोचर नहीं हो सकता । पूर्ण सुख तो केवल परमात्म-प्राप्ति से ही संभव है ।

यदि मनुष्य को परिस्थिति का उपयोग करना आ जाये तो वह परमात्मा के साथ ऐक्य स्थापित कर सकता है ।

यदि मनुष्य को परिस्थिति का उपयोग करना आ जाये तो वह परमात्मा के साथ ऐक्य स्थापित कर सकता है । किन्तु परिस्थिति को यदि जीवन मानने की भूल की तो परिस्थिति तुम्हें परेशान करके चौरासी लाख जन्मों के चक्कर में डाल सकती है ।

किसी भी परिस्थिति में सत्य-बुद्धि न रखें । जब तक परिस्थिति में सत्यबुद्धि रहेगी तब तक सच्चे जीवन के दर्शन नहीं हो सकते । सच्चे जीवन का दर्शन और परमात्मा का दर्शन दोनों एक ही बात है ।

यह बात सर्व साधनाओं की चाबी है । यदि योगी यह बात समझ जाये तो उसका योग सिद्ध हो जायेगा, भक्त अगर यह बात समझ जाये तो उसकी भक्ति सार्थक हो जायेगी । विचारक अगर यह बात समझे तो उसका विचार सिद्ध हो जायेगा । इस बात को समझकर व्यवहार में लायें तो फिर परमात्म-प्राप्ति ज्यादा दूर नहीं रहेगी, परम सुखी होने में कठिनाई न रहेगी ।

इस बात को समझने के लिए प्रतिदिन अभ्यास की आवश्यकता है । जो गलत अभ्यास पड़ गया है कि अमुक परिस्थिति उत्पन्न होगी फिर सुखी होंगे, इस गलत अभ्यास को मिटाने के लिए मेहनत करना, उसीका नाम है साधना । साधना को यदि विचार से करोगे तो दूसरे साधनों को लंबे समय तक करने की आवश्यकता न रहेगी ।

पहला विचार यह करना है कि परिस्थिति तो आने-जानेवाली है, फिर चाहे वह हर्ष की हो या शोक की, रोग की हो या स्वस्थता की, भय की हो या चिंता की, किन्तु सब जानेवाली हैं ।

दूसरी बात यह समझनी है कि दुःखद परिस्थिति को हम चाहें फिर भी रोक नहीं सकते क्योंकि वह प्राकृतिक है । जैसे बुढ़ापा, मृत्यु आदि दैवी विधान हैं और दैवी विधान सबके मंगल के लिये ही होता है । यदि कोई भी वृद्ध न हो, किसीकी भी मृत्यु न हो तो यह संसाररूपी पाठशाला चले कैसे ? पाठशाला से तो पुराने विद्यार्थी बाहर निकलते हैं और नये उसमें प्रवेश करते हैं तभी पाठशाला चलती है ।

तीसरी बात यह है कि किसी भी परिस्थिति में सत्यबुद्धि न रखें । जब तक परिस्थिति में सत्यबुद्धि रहेगी तब तक सच्चे जीवन के दर्शन नहीं हो सकते । सच्चे जीवन का दर्शन और परमात्मा का दर्शन दोनों एक ही बात है ।

इसलिए अभ्यास ऐसा करना चाहिए कि 'मैं प्रत्येक परिस्थिति का दृष्टा हूँ' यह ज्ञान हो जाये । 'परमात्मा की सत्ता से ही परिस्थितियाँ प्रकाशती हैं । उन परिस्थितियों का वर्णन और विचार मन और बुद्धि से हो सकता है । मैं उनका भी साक्षी हूँ । परिस्थितियों का साक्षी परमात्मा है वही मेरा आत्मा होकर बैठा है । बदलनेवाली परिस्थितियाँ 'मैं' नहीं । बाल्यावस्था बदल गयी वह 'मैं' नहीं था, यौवन बदल रहा है वह 'मैं' नहीं हूँ और बुढ़ापा बदल जायेगा वह भी 'मैं' नहीं रहूँगा । इन सब परिस्थितियों का साक्षी चैतन्य जो आत्मा है वह मैं हूँ...' ऐसा अभ्यास करने से सुख

की आसक्ति और दुःख का भय मिट जायेगा और समत्वयोग प्रकट हो जायेगा । भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

सुखं वा यदि वा दुःखं सः योगी परमो मतः ।

'सुख की परिस्थिति आये चाहे दुःख की परिस्थिति आये, किन्तु उसे केवल परिस्थिति समझनेवाला भक्त ही मेरे मतानुसार परम योगी है ।'

परिस्थिति जीवन नहीं है और परिस्थितियाँ कभी स्थायी नहीं रहतीं । तो फिर भय किसका और आसक्ति किससे ? दुःखद परिस्थिति स्थायी नहीं है तो उससे भय कैसे और सुखद परिस्थिति को आप रोककर नहीं रख सकते फिर अहंकार और आसक्ति किसकी? सुख की आसिक्ति और दुःख का भय तुम्हारे अंतःकरण को छिन्न-भिन्न कर देता है । इसलिए आप अपने-आप पर ही कृपा करो । सुख की आसक्ति और दुःख का भय हटाओगे तो आपका हृदय शुद्ध होगा और शुद्ध हृदय में गुरुकृपा, भगवत्कृपा सहज ही प्रगट होने लगेगी ।

जहाँ प्रेम होता है वहाँ दूसरी परिस्थिति की परवाह नहीं रहती । सांसारिक प्रेमी को भी माता-पिता, रिश्ते-नातों की परवाह नहीं रहती है । कल क्या होगा इसकी चिंता नहीं रहती । जहाँ प्रेम होता है वहाँ दूसरी परिस्थितियाँ गौण हो जाती हैं । अतः आप अपने जीवन के प्रति प्रेम करो । अपने आत्मा-परमात्मा में, गुरुतत्त्व में प्रीति बढ़ाओ तो बाहर की परिस्थितियों का आप पर प्रभाव नहीं पड़ेगा । यदि प्रेम करवटें लेता है तो वह प्रेम नहीं, परिस्थिति है और जहाँ प्रेम लगने के बाद हटता नहीं वह परमेश्वर है, परमात्मा है । अतः आप परिस्थिति को नहीं, जीवन को, साक्षी को, सच्चिदानंद को, अपने शुद्ध-बुद्ध स्वरूप को महत्त्व दें तो परमात्म-प्राप्ति आपके लिए सहज हो जायेगी ।

जहाँ प्रेम होता है वहाँ दूसरी परिस्थितियाँ गौण हो जाती हैं । अतः आप अपने जीवन के प्रति प्रेम करो । अपने आत्मा-परमात्मा में, गुरुतत्त्व में प्रीति बढ़ाओ तो बाहर की परिस्थितियों का आप पर प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

❀

(पृष्ठ २१ का शेष)

जाये इसीलिए प्रभु ने धन-धान्य देकर मुझे निश्चिंत कर दिया । वाह प्रभु ! वाह...!'

विदाई के समय कुछ नहीं दिया तब भी धन्यवाद और अब बहुत सारा दे दिया तब भी धन्यवाद । भक्त का जीवन धन्यवाद से भरा हुआ होता है । उसके जीवन में प्रेम, आनंद, शांति और सहनशीलता जैसे सद्गुण देखने को मिलते हैं । 'यह अच्छा है यह बुरा... ऐसा होना चाहिए और ऐसा नहीं होना चाहिए...' ऐसी राग या द्वेष की वृत्ति उनके चित्त में उठती ही नहीं है । भगवान श्रीकृष्ण भी कहते हैं :

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥

'जो न कभी हर्षित होता है न द्वेष करता है, न शोक करता है न कामना रखता है तथा जो शुभ और अशुभ कर्मों का त्यागी है वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है ।' (गीता : १२.१७)

जो राग और द्वेष की वृत्ति से ऊपर उठकर गुणग्राह्य दृष्टि रखकर जीवन बिताते हैं, वे श्रीहरि के गुणगान गाते हुए भगवान की भक्ति पाकर अपना जीवन धन्य बनाते हैं । हम भी राग-द्वेष छोड़कर भगवद्भजन में लग जायें एवं आज से ही अपना जीवन धन्य बनाने की शुभ शुरूआत कर दें...

धारणा की दृढ़ता और उद्देश्य की पवित्रता- ये दोनों मिलकर अवश्य बाजी मार ले जाएँगे और यदि एक मुट्ठीभर लोग इन दो शस्त्रों से सुसज्जित रहें तो वे निश्चित ही समस्त विघ्न-बाधाओं का सामना कर अन्त में विजय प्राप्त कर लेंगे । - स्वामी विवेकानंद

संत कबीर : एक अलौकिक व्यक्तित्व

२० जून १९९७ : कबीरजयंती पर विशेष

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

संत कबीरजी के अलौकिक व्यक्तित्व के बारे में भक्तमाल के रचयिता नाभादासजी ने कहा है :

कबीर कानि राखि नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी।
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी।
पच्छपात नहीं, बचन सबहिं के हित की भाखी॥
आरूढ़ दसा है जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखि नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी॥

(भक्तमाल, नाभादास, छप्पय : ६०)

पक्षपातरहित होकर हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही खरी-खरी सुना देनेवाले फिर भी दोनों के पूज्य संत कबीरजी के अलौकिक व्यक्तित्व की तरह ही उनका प्रागट्य भी अद्‌भुत ही रहा । इनके जन्म के संबंध में कई प्रकार की किंवदन्तियाँ हैं ।

कहते हैं कि जगद्‌गुरु रामानंद स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से ये उत्पन्न हुए । लज्जा के मारे वह ब्राह्मणी नवजात शिशु को लहरतारा के ताल के पास फेंक आयी । नीरू नाम का एक जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और उसीने उस बालक का पालन-पोषण किया । वही बालक आगे चलकर संत कबीर के रूप में प्रसिद्ध हुआ ।

कुछ कबीरपन्थी महानुभावों की मान्यता है कि कबीर का आविर्भाव काशी के लहरतारा नामक तालाब में कमल के अति मनोहर पुष्प के ऊपर बालकरूप में हुआ था ।

एक प्राचीन ग्रंथ में लिखा है कि किसी महान् योगी के औरस और पतीचि नामक देवांगना के गर्भ से भक्तराज प्रहलाद ही कबीर के रूप में संवत् १४५५ ज्येष्ठ शुक्ला १५ को प्रगट हुए थे । प्रतीचि ने उन्हें कमल के पत्ते पर रखकर लहरतारा तालाब में तैरा दिया था और नीरू-नीमा नाम के जुलाहा दम्पती जब तक आकर उस बालक को नहीं ले गये, तब तक प्रतीचि उनकी रक्षा करती रही ।

अस्तु । जो भी हो किन्तु इस अलबेले व्यक्तित्व से न केवल तत्कालीन समाज ही काफी लाभान्वित हुआ वरन् आज भी उनके पावन वचनों से पूरा विश्व लाभान्वित हो रहा है । संत-सुवास होती ही ऐसी है जो कभी मिटती नहीं ।

पाहन पूजे हरि मिलै, तौ मैं पूजूँ पहार ।
ता तें तो चक्की भली, पीसि खाये संसार ॥

ऐसा कहकर हिन्दुओं को एवं-

काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥

ऐसा कहकर मुसलमानों को खरी-खरी सुनानेवाले संत कबीर को माननेवाले भी हिन्दू-मुसलमान दोनों ही रहे, यह क्या कम आश्चर्यजनक है ? वे इतने प्रभावशाली थे कि कई बार उनके विरोधी तक उनके सामने मंत्रमुग्ध हो शांत हो जाते थे । अद्‌भुत ईश्वरीय अनुभव के धनी को अभिमान छू कैसे सकता है ?

कहते हैं कि सर्वानंद नामक एक प्रकांड विद्वान अनेक पंडितों एवं विद्वानों को शास्त्रार्थ में हरा चुका था । उसने अपना नाम सर्वानंद से बदल कर सर्वजित रख लिया था । उसकी माता अपनी काशी-यात्रा में एक बार कबीरजी के सत्संग में आयी और उनसे मंत्रदीक्षा ले गई । पुत्र के पांडित्य की व्यर्थता को समझते हुए उसने एक दिन सर्वजित से कहा कि वह उसे तभी सर्वजित मानेगी जब वह कबीरजी को शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा ।

माता के वचन सर्वजित को चुभ गये । एक बैल पर अपने शास्त्रों को लादकर वह काशी आया और कबीर के घर के सामने पहुँचकर उसने पुकारा :

''क्या कबीर का घर यही है ?''

कबीरजी कहीं बाहर गये हुए थे । उनकी पुत्री कमाली पुस्तकों से लदे बैल को देख मुस्करा कर बोली :

''यह कबीरजी का घर नहीं है । उनका घर तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी नहीं मिला ।''

कबीर का घर सिखर पर जहाँ सिलहिली गैब ।
पाँव न टिके पपील का पंडित लादे बैल ॥

अर्थात् 'कबीर का घर शिखर पर यानी अनंत ब्रह्माण्डों से भी ऊपर है जिसका मार्ग इतना फिसलन भरा है कि चींटी के पैर भी उस पर जम नहीं सकते जबकि पंडित तो लदे हुए बैल के साथ वहाँ पहुँचना चाहता है ।'

सर्वजित सहसा कोई उत्तर नहीं दे पाया । इतने में कबीरजी आ गये । तब सर्वजित ने उन्हें शास्त्रार्थ करने के लिए चुनौती दी । सर्वजित की चुनौती को सुनकर उन्होंने कहा :

''भाई ! मैं तो एक साधारण अनपढ़ जुलाहा हूँ । इतनी पुस्तकें तो मैंने जीवन में कभी देखीं तक नहीं ।''

लेकिन सर्वजित शास्त्रार्थ करने के लिए जिद्द करता ही रहा और कबीरजी द्वारा पूछने पर अपनी माता की बात भी बता दी ।

तब कबीरजी बोले : ''भाई ! मैं जानता हूँ कि शास्त्रार्थ में आपसे नहीं जीत सकता । मैं अपनी हार मानता हूँ ।''

सर्वजित : ''अगर आप हार मानते हैं तो लिखकर दे दें ।''

कबीरजी : ''मैं तो लिखना भी नहीं जानता, सिर्फ अपने दस्तखत कर सकता हूँ । आप खुद लिख दें, मैं दस्तखत कर दूँगा ।''

सर्वजित ने लिखा : '**सर्वजित ने कबीर को हरा दिया** ।' और कबीरजी ने अपने हस्ताक्षर कर दिये ।

घर लौटने पर जब सर्वजित ने कागज अपनी माता को दिखाया तो उसमें लिखा हुआ मिला : '**कबीर ने सर्वजित को हरा दिया** ।'

अपने लिखने में ही गलती हो गयी है यह सोचकर सर्वजित पुनः काशी गया और कबीरजी से एक नई परची पर हस्ताक्षर करवाकर लौटा । किन्तु आश्चर्य ! इस बार भी परची पर लिखा था : '**कबीर ने सर्वजित को हरा दिया** ।' ऐसा तीन बार हुआ । हैरान होकर सर्वजित ने अपनी माता से कहा :

''माँ ! ये कबीर अवश्य कोई जादूगर हैं । वे कुछ कर देते हैं और मेरा लिखा हुआ बदल जाता है ।''

उसकी माता कबीरजी की महानता से परिचित थी । वह बोली :

''बेटा ! कबीरजी एक संत हैं, प्रभु के प्रेमी हैं, जादूगर नहीं । उनके सामने मन के दोष एक ओर हट जाते हैं और सच्चाई प्रगट हो जाती है । उनसे प्रभावित होकर न चाहते हुए भी तुम बार-बार वही बात लिख देते हो । कबीरजी को परास्त करने के लिए तुम्हें चाहिए कि यह मालुम करो कि उनका उपदेश क्या है ? देखो ! वे कितने नम्र हैं ! उनको जीतने के लिए तुम्हें भी सरलता अपनानी होगी क्योंकि अभिमान कभी नम्रता पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता ।''

सर्वजित एक बार पुनः कबीरजी के पास गया किन्तु इस बार उसके साथ पुस्तकों से लदा बैल नहीं था । कबीरजी के कुछ दिनों के संपर्क ने ही उसे बदल दिया । कबीरजी की महानता स्वीकार करते हुए उसने अपनी हार स्वीकार कर ली और कबीरजी का शिष्य हो गया । फिर उसे शांति, हृदय का माधुर्य मिला, परमात्मरस में प्रवेश पाया, '**सः तृप्तो भवति । सः अमृतो भवति**' का रास्ता उसे मिल गया और वह हृदयपूर्वक नतमस्तक हो गया ।

अतः संतों का व्यक्तित्व होता ही इतना विराट है कि नतमस्तक हुए बिना नहीं रहा जाता ।

जगत की सबसे बड़ी सेवा है जगत के प्राणियों में सद्भावों को, भगवद्भावों को जाग्रत करके उनको बढ़ाना, उन्हें भगवान की ओर लगाना । – श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार

संसार-स्वप्न से जागो

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

चित्त की समता प्रसाद की जननी है । हजारों वर्ष नंगे पैर घूमने की तपस्या, सैकड़ों वर्ष के व्रत-उपवास चित्त की दो क्षण की समता की बराबरी नहीं कर सकते । चित्त को सम करना यह आपके हाथ की बात है और यह समत्वयोग समस्त योगों में शिरोमणि है ।

समत्वं योग उच्यते ।

दुःख के समय आप सम रह जायें तो आप दुःख का उपयोग करके दुःखहारी श्रीहरि से मिलने में दो कदम आगे बढ़ जायेंगे । सुख के समय सम रहकर सुख का उपयोग करें तो सुखस्वरूप चैतन्य में विश्रान्ति पाने में भी आप सफल हो जायेंगे । सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जीवन-मरण ये सब मायामात्र द्वैत में हैं । समर्थ रामदास ने 'दासबोध' में कहा है :

दुःख के समय आप सम रह जायें तो आप दुःख का उपयोग करके दुःखहारी श्रीहरि से मिलने में दो कदम आगे बढ़ जायेंगे ।

''एक अजात पुरुष को (जो अभी जन्मा ही नहीं है उसको) स्वप्न आया कि 'मेरे पिता मुझ पर प्रसन्न हैं और उन्होंने मेरा राजतिलक किया । मैं राज्य भोगते-भोगते मौत के कगार पर जा खड़ा हुआ और सावधान होकर सत्कर्म में लग गया एवं सत्पुरुषों के पास गया । उन सत्पुरुषों ने मेरे बंधन काट दिये और अब मैं मुक्त हो गया हूँ... ।'

बहुत बड़ी बात कह दी है उन महापुरुष ने कि अजात पुरुष- जो अभी जन्मा ही नहीं, उसका राजतिलक भी हो गया, उसने भोग भी भोग लिये और मुक्ति भी हो गयी... ऐसा उसने स्वप्न देखा । ऐसे ही आप-हम भी स्वप्न देख रहे हैं ।

वास्तव में हमारा-आपका असली रूप में जन्म ही नहीं हुआ है । स्वप्न देख रहे हैं कि 'मेरा जन्म हुआ... मैं जूटमिलवाला... मैं आश्रमवाला... मैं पैसेवाला... मैं महलवाला...' हकीकत में यह स्वप्न ही देखा जा रहा है। इसी स्वप्न से जागने का संकेत करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं :

मोहनिशा सब सोवनहारा ।
देखहिं स्वप्ने अनेक प्रकारा ॥

वास्तव में जो हम हैं उसका पता नहीं और जो हम नहीं हैं ऐसे स्वप्न जैसे शरीर को 'मैं' मानकर और स्वप्न जैसी वस्तुओं को 'मेरी' मानकर हम स्वप्न देख रहे हैं ।

वास्तव में जो हम हैं उसका पता नहीं और जो हम नहीं हैं ऐसे स्वप्न जैसे शरीर को 'मैं' मानकर और स्वप्न जैसी वस्तुओं को 'मेरी' मानकर हम स्वप्न देख रहे हैं ।

एक बार संत कबीर ने अपने प्यारे शिष्यों के लिए एक लीला रची । प्रभातकाल में सब शिष्य गुरु के दर्शन करने के लिए आते थे । भजन-कीर्तन करते थे । सुबह-सुबह गुरु के दर्शन करनेवाले शिष्यों ने देखा कि गुरु तो छाती पीटकर रो रहे हैं ।

शिष्य आश्चर्यचकित होकर पूछने लगे :

''गुरुदेव ! आप रो रहे हैं ?''

कबीरजी : ''क्या करें ? मेरा तो सब चला गया ।''

शिष्य : ''गुरुदेव ! क्या हुआ ? किस प्रकार आपका दुःख दूर हो सकता है ? आप आज्ञा करें तो हम प्रयास करें ।''

कबीरजी : ''तुम क्या करोगे...? हाय रे हाय !

अब क्या होगा...?'' कबीरजी पुनः रोने लगे ।

जो नकल होती है उसका प्रभाव असल से भी ज्यादा होता है । गरीब होने का, भिखारी होने का अभिनय सच्चे भिखारी से ज्यादा जोरदार होता है और सम्राट का अभिनय वास्तविक सम्राट से भी ज्यादा प्रभावशाली होता है । कबीरजी तो कर रहे थे लीला । वे रो पड़े । उनका रुदन देखकर शिष्यवृंद भी रोने लगा और बोला :

''गुरुजी ! ऐसी कोई चीज नहीं कि हम आपको लाकर न दे सकें । अथवा, आपको किसीने सताया है ? बताइए ।''

कबीरजी : ''मुझे किसीने सताया नहीं है और न ही मुझे कोई वस्तु चाहिए ।''

शिष्य : ''तो फिर आप रो क्यों रहे हैं ?''

कबीरजी : ''अब रोने के सिवाय कोई चारा भी तो नहीं है ।''

शिष्य : ''आखिर बात क्या है ?'' खूब आग्रह करके शिष्य पूछने लगे । ''स्वप्न में आपने ऐसा क्या देखा, गुरुदेव ! कि आप अभी रो रहे हैं ?''

कबीरजी : ''स्वप्न में मैं चिड़िया बन गया था ।''

शिष्य : ''ऐसा तो होता रहता है, इसमें रोने की क्या बात है गुरुदेव !''

कबीरजी : ''परन्तु मुझे अब पता नहीं कि मैं कबीर हूँ कि चिड़िया हूँ ?''

शिष्य : ''गुरुदेव ! आप तो संत कबीर हैं, चिड़िया नहीं हैं ।''

कबीरजी : ''यह कैसे मानूँ ? स्वप्न में चिड़िया था तो वह सच्चा लग रहा था और इस समय यह सच्चा लग रहा है । इन दोनों में सच्चा क्या ?''

शिष्य : ''गुरुजी ! वह झूठा अर्थात् स्वप्न झूठा और यह सच्चा है ।''

कबीरजी : ''यह सच्चा कैसे ? उस समय तो चिड़िया होना सच्चा लग रहा था, यह झूठा लग रहा था । हाँ, एक फर्क है कि जब मैं चिड़िया बन गया था उस समय कबीर की स्मृति नहीं थी लेकिन अब जब मैं कबीर हूँ तब भी चिड़िया की स्मृति है । चिड़िया की स्मृति गहरी है तो शायद मैं वही हूँ ।''

शिष्य : ''गुरुदेव ! आप चिड़िया नहीं हैं ।''

कबीरजी : ''सुनो । आप जैसा अपने में स्मरण थोपते हैं ऐसा अपने को मानते हैं । वास्तव में मिथ्या में स्मरण थोपकर मिथ्या शरीर को 'मैं' मान लेते हैं और सत्य में स्मृति थोपकर सत्यस्वरूप परमात्मा में जाग जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं ।''

शिष्य समझ गये कि इस लीला के द्वारा भी गुरु हमें जगाना चाहते हैं ताकि हम भी अपने वास्तविक स्वरूप में, परमात्मतत्त्व में जाग जायें ।

नुकते की हेर-फेर में खुदा से जुदा हुआ ।
नुक्ता अगर ऊपर रखें तो जुदा से खुदा हुआ ॥

उस अकाल पुरुष से तुम्हारी चेतना उठती है और शरीर को 'मैं' मानने लगती है तो तुम हो गये संसारी । ईंट, चूना, लोहे-लक्कड़ के मकान का नाम संसार नहीं है । इस देह को 'मैं' मानना और मिटनेवाली चीजों को 'मेरा' मानना- यह मान्यता ही संसार है । **संसरति इति संसारः ।** जो सरकता जाये उसीको तो संसार कहते हैं लेकिन जो सरकनेवाले संसार को देखता है वह कभी न सरकनेवाला आत्मा है और उस आत्मा में 'मैं' की वृत्ति टिक जाये तो कल्याण हो जाये ।

मिल जाये कोई ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष और लग जाये कोई सत्‌शिष्य ईमानदारी से...

जो सरकता जाये उसीको तो संसार कहते हैं लेकिन जो सरकनेवाले संसार को देखता है वह कभी न सरकनेवाला आत्मा है और उस आत्मा में 'मैं' की वृत्ति टिक जाये तो कल्याण हो जाये ।

बीते हुए समय को याद न करना, भविष्य की चिन्ता न करना और वर्तमान में प्राप्त सुख-दुःख आदि में सम रहना ये जीवन्मुक्त पुरुष के लक्षण हैं ।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

परम भक्ति पाना हो, परम सुख पाना हो, परम तत्त्व को पाना हो, ब्रह्मज्ञान को पाना हो तो भक्त को कैसा बनना चाहिए ?

भक्त की पहचान क्या है ? जो परमात्मा से, अकाल पुरुष से अपने को विभक्त नहीं मानता-जानता वह उत्तम भक्त है । ऐसा उत्तम भक्त, परम भक्त कैसा होता है ? भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

(गीता : १२.१३)

प्राणीमात्र के प्रति उसके चित्त में द्वेष का अभाव होता है । सबके प्रति मैत्रीभाव एवं जो अपने से छोटे हैं उनके प्रति उसके हृदय में करुणा होती है । ममता एवं अहंकार इन दोनों दुर्गुणों से वह अपने को बचाता है । सुख-दुःख में सम एवं क्षमावान् होता है ।

इस प्रकार जो सब प्राणियों में द्वेषभाव से रहित, सबका प्रेमी, दयालु और ममता एवं अहंकार से रहित, सुख-दुःख की प्राप्ति में सम और क्षमाशील है, जिसका चित्त निरंतर उस परमात्म-प्रसाद में विराजता है, जो परमात्मा से विभक्त नहीं होता ऐसा जो अपने को ईश्वर से, ईश्वर को अपने से अलग नहीं समझता वही उत्तम भक्त है । नानकजी कहते हैं कि :

जैसा अंम्रितु वैसी बिखु खाटी ।
जैसा मानु तैसा अपमानु ॥
हर्ष शोक जा के नहीं, वैरी मित समान।
कह नानक सुन रे मना, मुक्त ताहि ते जान॥

भगवान वेदव्यासजी ने भी कहा है कि अगर तुम्हें संसार में सुखी होना हो तो इन चार बातों को ठीक से समझ लो । इन चार बातों से संपन्न होकर जगत का व्यवहार करो ।

(१) **मैत्री :** जो अपने से ज्ञान में, भक्ति में, सत्कर्म में, शुभ गुणों में ऊपर हैं उनसे मैत्री करो ।

(२) **करुणा :** जो अपने से ज्ञान, भक्ति, कर्म या अन्य किसी कारण से छोटे हैं उन पर करुणा करो, नहीं तो कदम-कदम पर क्रोध आ जायेगा, नाराज होने लगोगे जिससे अपना दिल बिगड़ता रहेगा ।

(३) **मुदिता :** मुदिता से तात्पर्य है दूसरों की खुशी, दूसरों का सुख देखकर सुखी होना । स्वयं भी प्रसन्न रहो और दूसरों को भी प्रसन्नता एवं सत्कार्य में उत्साह प्रदान करो ।

(४) **उपेक्षा :** जो निपट-निराले हैं, निगुरे हैं, जिन्हें आपकी, संसार की या भगवान की, सत्कर्म करने की कुछ पड़ी ही नहीं है, जो अपने सीमित दायरे में ही बँधे हुए हैं - ऐसे लोगों के प्रति न तुम द्वेष करो, न मैत्री करो, बल्कि ऐसा समझो कि वे तुम्हारे लिए धरती पर पैदा ही नहीं हुए । अगर दुष्ट व दुश्चरित्रवान आपके कहने से नहीं सुधरे तो उनकी उपेक्षा करो । ऐसा शास्त्र कहते हैं ।

'क्या करें... तीन लड़के तो आज्ञाकारी हैं लेकिन चौथा नहीं मानता है...' नहीं मानता है तो उसे प्रेम से समझाने का प्रयास करो लेकिन तीनों के गुणों को भूलकर, चौथे के अवगुणों को याद करते-करते अपने दिल को मत बिगाड़ो ।

रक्षताम् रक्षताम् कोषानामपि हृदयकोषम् ।
तेन रक्षितम् सर्वं रक्षितमिदं...

किसी मरीज का हृदय चीरकर किसी यंत्र से या माइक्रोस्कोप से भगवान दिख जाते तो फिर धर्म-कर्म की कोई जरूरत ही न रहती । नाम-स्मरण एवं भजन की कोई जरूरत ही न रहती । किसी सत्शास्त्र एवं धर्मग्रन्थों की जरूरत ही न रहती ।

'रक्षा करो, रक्षा करो... जो कोषों का कोष है, खजानों का खजाना है, उस हृदय की रक्षा करो ।'

जरा-जरा बात में अपने दिल को झुलसने से बचाओ । जरा-जरा बात में अपने दिल को भयभीत होने से बचाओ, छोटी-छोटी बातों में कहीं तुम्हारा दिल फँस न जाये या कुढ़ता न रहे उससे अपने दिल की रक्षा करो । अपने हृदय की रक्षा करो ।

यह वह दिल नहीं, जो डाक्टरों को दिखता है । डॉक्टरों को जो दिल दिखता है वह शारीरिक ढंग से, स्थूल रूप से दिखता है । उस हृदय में और आध्यात्मिक हृदय में फर्क है । शुद्ध मन को हृदय कहते हैं ।

इन्द्रियों के साथ जब मन जुड़ता है तभी इस जगत का पता चलता है । मन के साथ जब विज्ञानमय, बुद्धिमय कोष जुड़ता है तब निर्णय आता है और विज्ञानमय कोष की गहराई में आनंदमय कोष है उसमें जो आनंद आता है वह अकाल पुरुष है ।

एक बार मुझे डाक्टरों के टोले ने श्रद्धा-भक्ति के पुष्प बिछाकर घेर लिया ।

उन्होंने पूछा : ''बापू ! भगवान सबमें हैं ?''

मैंने कहा : ''हाँ ।''

''सबके हृदय में हैं ?''

''क्यों ? तुम्हें शक है क्या ?''

''आप मानते हैं ?''

''मैं न भी मानूँ तब भी जो है सो है । हम सब कह दें सूरज नहीं है तो क्या हमारे कहने से सूरज चला जायेगा ?''

मन में कभी सुख आता है कभी दुःख आता है लेकिन तुम सुख और दुःख को देखनेवाले हो । अच्छे या बुरे विचार तुम्हारी मति में आते हैं । तुम उनके द्रष्टा हो । उन्हें देख लो तो बस, समस्त जन्मों का काम पूरा हो गया समझो ।

सब डॉक्टर एक-दूसरे की ओर देख-देखकर मंद-मंद मुस्कुराने लगे ।

मैंने पूछा : ''क्या बात है ?''

तब एक ने कहा : ''बापू ! ये मेरे मित्र हैं और हार्ट स्पेश्यलिस्ट हैं और मैं एम. डी. हूँ । मेरी पत्नी भी डॉक्टर है । हम आठों के आठों इस विषय में, सर्जरी में बहुत आगे हैं । जब हमारे ये हार्ट स्पेश्यलिस्ट मित्र कोई हार्ट का ऑपरेशन करते हैं तब हम सब वहाँ पहुँच जाते हैं । देखें, हृदय में भगवान हैं तो उनके दर्शन करके हमारा काम बन जाये ।''

मैंने कहा : ''इस प्रकार किसी मरीज का हृदय चीरकर किसी यंत्र से या माइक्रोस्कोप से भगवान दिख जाते तो फिर धर्म-कर्म की कोई जरूरत ही न रहती । नाम-स्मरण एवं भजन की कोई जरूरत ही न रहती । किसी सत्शास्त्र एवं धर्मग्रन्थों की जरूरत न रहती । माइक्रोस्कोप से तो आपको स्थूल शरीर के स्थूल अवयव दिख सकते हैं ।

आपका यह जो स्थूल शरीर दिखता है केवल वही नहीं है । इसके भीतर चार और भी हैं । यह जो हमारा स्थूल शरीर दिखता है उसे अन्नमय कोष कहते हैं । इसके भीतर प्राणमय कोष है । प्राणमय से आगे मनोमय कोष है । मनोमय से गहरा विज्ञानमय कोष है । विज्ञानमय से भी गहरा आनंदमय कोष है और उस आनंदमय कोष में चेतना उसी अकाल पुरुष परब्रह्म परमात्मा की है ।

तुम हृदय के पुर्जे-पुर्जे अलग कर दो और देखो तो तुमको कहीं यह नहीं दिखेगा कि इसने कभी प्यार किया था । कहाँ प्यार किया ? कहाँ नफरत की ? शरीर के पुर्जे की जाँच करने पर कहीं तमन्नाएँ नहीं दिखेंगी, कामना नहीं दिखेगी, प्रसन्नता नहीं दिखेगी, ज्ञान नहीं दिखेगा ।

तुमको दिखेगा भी तो माँस, नस-नाड़ियाँ, पेशियाँ, रक्त आदि दिखेगा । फिर भी मनुष्य ने प्यार तो किया ही है । नफरत भी की है । विचार भी किया है और इच्छा भी की है किन्तु स्थूल रूप से उसे भौतिक शरीर मे देख पाना संभव नहीं है ।''

हमारे इस शरीर में पाँच कोष हैं : अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय । जैसे, बादाम में

पाँच कोष हैं । एक तो बादाम के फल का छिलका, दूसरा उसकी गिरी, तीसरी लकड़ी जैसी कठोर परत, चौथी बदामी रंग की पतली परत और पाँचवीं सफेद रंग की गिरी और उसके भीतर है बादाम का तेल । या तो यूँ समझ लो कि बरफ के एक टुकड़े को एक डिब्बी में रखा, उस डिब्बी को दूसरी में, दूसरी को तीसरी में, तीसरी को चौथी में, चौथी को पाँचवीं डिब्बी में । अब बाहर की पाँचवीं डिब्बी भी ठंडी लग रही है । क्यों ? क्योंकि उसको चौथी का स्पर्श है, चौथी को तीसरी का, तीसरी को दूसरी का, दूसरी को पहली का और पहली डिब्बी की ठंडक बरफ के कारण है । ऐसे ही स्थूल शरीर को, अन्नमय कोष को जो मजा आता है रसगुल्ले खाने का या ठंडी हवा लेने का, तो यह मजा आत्मा का है... परमात्मा का है । अगर शरीर मर जाये तो फिर जीभ पर रसगुल्ला रखने पर भी मजा नहीं आयेगा । लड़का सोया हो और पिता उसके मुँह में रसगुल्ला रख दे तो जीभ और रसगुल्ले की मुलाकात तो हुई किन्तु लड़के को मजा नहीं आया क्योंकि मनोमय कोष सोया हुआ है । जब लड़का जागता है तभी उसे रसगुल्ले की मिठास का पता चलता है ।

...तो मानना पड़ेगा कि इन्द्रियों के साथ जब मन जुड़ता है तभी इस जगत का पता चलता है । मन के साथ जब विज्ञानमय, बुद्धिमय कोष जुड़ता है तब निर्णय आता है। विज्ञानमय कोष की गहराई में आनंदमय कोष है उसमें जो आनंद आता है वह अकाल पुरुष है ।

वास्तव में तुम्हारा आत्मा अकाल पुरुष से जुड़ा है और तुम्हारा शरीर इन संसारी चीजों से जुड़ा है । शरीर पंचमहाभूतों से बना है अतः पंचभौतिक वस्तुओं के बिना नहीं जीता लेकिन तुम इन वस्तुओं के बिना भी जीते हो । ऐसी कौन-सी चीज है जो मृत्यु के समय भी नहीं मरती ? ऐसा क्या है जो सब कुछ छूट जाने के बाद भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता ? वह है तुम्हारा आत्मा, तुम्हारा ज्ञानस्वरूप चैतन्य ।

मन तू ज्योतिस्वरूप अपना मूल पिछान ।

तुम मोटे या पतले नहीं होते, तुम लम्बे या नाटे नहीं होते किन्तु अपने को मोटा-पतला, नाटा-लम्बा आदि मान बैठते हो । मोटा या पतला माँसपेशियों से बना शरीर होता है, काली या गोरी त्वचा होती है, लम्बा या नाटा हड्डियों का पिंजर होता है । वास्तव में तुम तो इन सबको देखनेवाले चैतन्य हो । मन में कभी सुख आता है कभी दुःख आता है लेकिन तुम सुख और दुःख को देखनेवाले हो । अच्छे या बुरे विचार तुम्हारी मति में आते हैं । तुम उनके दृष्टा हो । उन्हें देख लो तो बस, समस्त जन्मों का काम पूरा हो गया समझो ।

तुम्हारे दिल में ही दिलबर छुपा हुआ है उसका अनुसंधान करो । उसका अनुसंधान (खोज) करोगे तो तुम्हारा चित्त 'अद्वेष्टा' यानी द्वेषरहित हो जायेगा ।

शराब जिस बोतल में रहती है या जहर जिस बोतल में रहता है उसका कुछ नहीं बिगड़ता । लेकिन द्वेष तो जहर से भी बुरा है क्योंकि जिस दिल में होता है उसी दिल को पहले बिगाड़ता है । इसीलिए भगवान कहते हैं कि 'हे मानव ! तुझे अगर अपनी मस्ती पानी हो, सच्चे जीवन का दीदार करना हो, भक्ति का रस पाना हो, ज्ञान का रस पाना हो तो द्वेषरहित हो जा ।'

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

प्राणीमात्र के प्रति द्वेषरहित चित्त बनाओ । श्रेष्ठ पुरुषों से मैत्री रखो । छोटों के प्रति करुणा रखो । जो धनवान हैं, फेक्ट्रियों के मालिक हैं उनके प्रति छोटों को मित्र भाव रखना चाहिए और उन धनवानों को अपने से छोटों के प्रति करुणा रखनी चाहिए । बड़ों की धनसंपत्ति देखकर छोटे जलें नहीं और छोटों को तुच्छ मानकर बड़े उनका शोषण न करें, तभी समाज सुखी होगा, राज्य सुखी होगा, देश सुखी होगा और विश्व सुखी होगा ।

द्वेषरहित हों, मैत्री और करुणा से युक्त हों और ममतारहित हों । ममता बड़ी दुःखदायी है अतः शरीर और शरीर के संबंधों में, वस्तुओं में ममता न रखें । निरहंकारी बनें, सुख-दुःख में समता बनाये रखें और क्षमावान् बनें तो परमात्मा को पाना आपके लिए सहज हो जायेगा । परमात्मा के दीदार करना सरल हो जायेगा ।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

शास्त्र में भगवान कहते हैं :

''जो मेरे नाम का गान करता हुआ नाचता है और मुझे अपने समीप मानता है, जो सुख में, दुःख में, सबमें मेरा हाथ देखता है, मित्रों के स्नेह भरे व्यवहार में भी मुझ परम मित्र को ही देखता है, शत्रुओं की कटुता में भी मेरे संयम भरे संदेश को ही देखता है... तुमसे सत्य कहता हूँ अर्जुन ! मैं उसके द्वारा खरीद लिया गया हूँ। मैं उसका हो गया हूँ। वह मुझसे दूर नहीं रह सकता है और मैं उससे दूर नहीं रह सकता हूँ।''

कितना भी ज्ञान हो, कितनी भी अक्ल हो, कितनी भी होशियारी हो लेकिन विषय-भोग की आसक्ति अक्लवाले को भी मूढ़ और बुद्धू बना देती है।

हमारे जीवन में केवल समझ आ जाये। धन आ गया तो क्या हो गया ? सत्ता आ गयी तो क्या हो गया ? सौन्दर्य आ गया तो क्या हो गया ? दोस्त मिल गये तो क्या हो गया ? ये तो सब छूटनेवाली चाजें हैं। यदि सत्संग के द्वारा सत्य की समझ आ जाये तो वह समझ अमर आत्मा से मिला देगी।

प्रभु के सेवक का स्वभाव ही होता है कि किसी भी प्राणी, पदार्थ या परिस्थिति के प्रति उसकी आसक्ति नहीं होती कि 'ऐसी ही परिस्थिति सदा बनी रहे...'

श्रीमद्भागवत की कथा और सत्संग से मनुष्य का काम, क्रोध, भय, रोग, शोक, स्वार्थ, निंदा, घृणा, ग्लानि ये दोष सहज में क्षीण होते रहते हैं। श्रीमद्भागवत की कथा से मनुष्य में दया, क्षमा, उदारता, सज्जनता, शूरवीरता, सहानुभूति और प्राणीमात्र के हित की भावना से प्रेरित होकर सत्कर्म करने में मनुष्य की रुचि हो जाती है। लम्बे-चौड़े कायदे-कानून तो कोर्ट-कचहरी या संसद में रखे रह जाते हैं लेकिन बढ़िया कार्य तो उन्हीं के द्वारा होता है, जिनके जीवन में सत्संग है, जिनके जीवन में सदाचार है, जिनके जीवन में गीता और भागवत जैसे ग्रंथों का ज्ञान है। फिर वे चाहे राजसत्ता में हैं चाहे नौकरी या बिजनेस के क्षेत्र में हैं लेकिन उनके द्वारा अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा समाज के हित के कार्य ज्यादा होते हैं।

स्वामी विवेकानंद कहते थे : ''अभी-भी अस्पतालों में, कोर्ट-कचहरियों में या समाज में जहाँ कहीं भी सच्चाई और सज्जनता दिखती है, उसके पीछे प्रत्यक्ष या परोक्ष सत्संग का ही हाथ होता है। सदाचारी महापुरुषों के संग का ही प्रभाव है जिससे वे लोग अच्छाई से जी रहे हैं। हो सकता है कि भगवान का भक्त या सत्संगी व्यक्ति पचास गलतियाँ करता दिखे लेकिन वह अगर सत्संगी नहीं होता तो पचास की जगह पाँच सौ गलतियाँ करता।''

सत्संग सुनने से गलतियाँ धीरे-धीरे कम होने लगती हैं, आसक्तियाँ धीरे-धीरे कम होने लगती हैं। कितना भी ज्ञान हो, कितनी भी अक्ल हो, कितनी भी होशियारी हो लेकिन विषय-भोग की आसक्ति अक्लवाले को भी मूढ़ और बुद्धू बना देती है। ऐसा नहीं है कि वायसरॉय में अक्ल नहीं होती है। अरे ! उसके एक हस्ताक्षर मात्र से हजारों लोगों की हत्या हो सकती है। इतना अधिकार और इतनी अक्ल उसको होती है। उसकी एक आज्ञा मात्र से हजारों सैनिकों में खड़भड़ाहट हो जाती है, लेकिन रात को वह वायसरोय

लेडी के आगे गिगिड़... गिगिड़... करके उसके इशारों पर नाचने लग जाता है । विषयासक्ति मनुष्य को अंधा बना देती है और भगवान की आसक्ति मनुष्य को महापुरुष बना देती है ।

श्रीमद्भागवत में आता है कि कपिल भगवान ने माता देवहूति से कहा :

''आसक्ति को सर्वथा त्यागना चाहिए । वैसे तो आसक्ति है ही दुःखदायी, चाहे वह धन की हो, चाहे सत्ता की हो, चाहे किसी भी वस्तु की हो, लेकिन वही आसक्ति भगवान और भगवान के प्यारे संतों, महापुरुषों के प्रति है तो वह आसक्ति तारनेवाली हो जाती है, कल्याण करनेवाली हो जाती है । प्रभु के सेवक का स्वभाव ही होता है कि किसी भी प्राणी, पदार्थ या परिस्थिति के प्रति उसकी आसक्ति नहीं होती कि 'ऐसी ही परिस्थिति सदा बनी रहे ।' वह यदि किसी व्यक्ति से मिलता है या किसी वस्तु, प्राणी अथवा पदार्थ को पाता है तब भी उस पर अंदर से अपना अधिकार नहीं मानता है । वह समझता है कि यह जो कुछ मिला है वह छोड़ने के लिए ही मिला है । चाहे कितना भी पकड़कर रखो, छोड़ना ही पड़ता है । जैसे, सिर पर पगड़ी पहनी है तो कुछ समय के बाद उतारनी ही पड़ती है, जूते पहने हैं तो उन्हें भी उतारने पड़ते हैं । कितना भी धन पाया, पर अंत में छोड़ना ही पड़ता है । मित्र मिलता है तो वियोग भी होता ही है । जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो सदा तुम्हारे साथ रहे । ऐसी कोई व्यक्ति नहीं जो सदा तुम्हारे साथ रहे । ऐसी कोई परिस्थिति नहीं जो सदा एक-सी बनी रहे । जो वस्तु, परिस्थिति सदा साथ नहीं रहती उसीको पकड़कर रखने की बेवकूफी कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्यमात्र दुःखी है, चिंतित और भयभीत है ।

ठंडी आयी तो उसका भी मजा लो और गर्मी आयी तो उसका भी मजा ले लो । गर्मी में गर्मी के अनुकूल वस्त्र पहनना ठीक है, सर्दी में जरा गरम वस्त्र पहनना ठीक है, लेकिन सर्दी आयी तब भी रोये कि 'हाय... हाय... बहुत ठंड है...' गर्मी आयी तब भी रोये कि 'हाय... हाय... बहुत गर्मी पड़ रही है ।' अरे ! गर्मी नहीं पड़ेगी तो बारिश ठीक से नहीं होगी । बारिश आयी तो रो रहे हैं कि 'हाय... हाय... कीचड़ हो गया ।' जिसको ठंडी सहने का अभ्यास नहीं है वह गर्मी भी नहीं सह सकता । जो सर्दी और गर्मी के अनुकूल नहीं हो सकता है वह बारिश में भी दुःखी ही रहेगा । अरे ! शरीर मिला है तो सब परिस्थितियों को पचाते जाओ । शरीर को मजबूत बनाओ ।

जिसने मन को जीत लिया, उसने सारे जग को जीत लिया । जिसका मन एकाग्र है उसका शत्रु क्या बिगाड़ सकता है ? उसके आगे स्वर्ग का सुख क्या होता है ?

शास्त्र कहते हैं : देवव्रत भीष्म, जब ननिहाल में रहते थे तब एक बार वे पहाड़ से गिरे, तो जिस चट्टान पर गिरे वह चट्टान टूट गई किन्तु देवव्रत भीष्म को कुछ नहीं हुआ । ऐसा मजबूत शरीर था । आज कल तो बच्चे चलते-चलते फिसल जायें तो फ्रेक्चर हो जाता है ।

हमारे यहाँ वैदिक परम्परा है कि बच्चा जब जन्म ले तब उसकी जिह्वा पर 'ॐ' लिखा जाये जिससे बच्चा बड़ा होकर तेजस्वी बने । साथ ही उसके कान में कहा जाता है कि : 'हे पुत्र ! तेरा शरीर पत्थर की नाईं मजबूत रहे । तू कुल्हाड़े की तरह विघ्न-बाधाओं को काटनेवाला हो, तू सूर्य की तरह, अग्नि की तरह तेजस्वी हो और सब कर्मबन्धनों को जलाकर भस्म करनेवाला हो । हरि ॐ... ॐ... ॐ...

अश्मा भव । परशुर्भव । हिरण्यमंस्तूतं भव ।

हे पुत्र ! तू पत्थर बन । तू कुल्हाड़ा बन और स्वर्ण की भाँति इस संसार में चमकता रहे ।'

शरीर को मजबूत बनाने के साथ-साथ शरीर स्वस्थ रहे ऐसे नियमों को जान लेना चाहिए । इसी प्रकार यदि मन बड़ा चंचल, अशांत और दुःखी रहता है तो मन को शांत करने का उपाय भी जान लेना चाहिए । भगवान श्रीकृष्ण मन को शांत रखने का उपाय

(शेष पृष्ठ २८ पर)

ईश्वरकृपा की समीक्षा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

संसार के दुःखों की मार लगने पर साधुताई का जीवन बिताएँ या कि विवेक जागृत होने पर ? जो पुण्यात्मा हैं वे विवेक से जाग जाते हैं । जिसके पुण्य कम हों उसे ठोकरें लगा-लगाकर भी परमात्मा जगाने की व्यवस्था करता है । मरकर तो सभी ने छोड़ा है लेकिन जीते-जी आसक्ति छोड़नेवाला जीवनदाता के अनुभव को पा लेता है ।

जो पुण्यात्मा हैं वे विवेक से जाग जाते हैं । जिसके पुण्य कम हों उसे ठोकरें लगा-लगाकर भी परमात्मा उसे जगाने की व्यवस्था करता है ।

'नारदपंचरात्र' ग्रंथ में एक श्लोक आता है :

देशत्यागो महानव्याधिः विरोधो बन्धुभिः सह ।
धनहानि अपमानं च मदनुग्रहलक्षणम् ॥

'राजा को देश त्यागना पड़े अथवा व्यक्ति को अपना घर, गाँव, नगर, देश छोड़ना पड़े, महारोग हो, बन्धुओं की ओर से विरोध हो, धन की हानि हो, अपमान हो, यह सब अगर एक साथ भी किसी व्यक्ति को होने लग जाए तो हे नारद ! यह समझ लेना कि उस पर मेरी ही कृपा है । ये मेरे अनुग्रह के लक्षण हैं ।'

बंगाल में खुदीराम नामक एक कृषक रहते थे । वे जिस गाँव में रहते थे वहाँ का मुखिया शोषक प्रकृति का व्यक्ति था । किसी को सूद पर, खेत गिरवी रखकर पैसे देता तो फिर उसका खेत ही हड़प कर लेता था । एक बार उसने खुदीराम को झूठी गवाही देने के लिए बाध्य करना चाहा ।

खुदीराम ने कहा : ''मैं जानता हूँ कि कई मंत्री तुम्हारे घर आते हैं, खाना-पीना होता है, पुलिस अफसरों को भी तुम उँगली पर नचाते हो । तुम जो करना चाहो वह कर सकते हो । तुम इतने बदमाश हो फिर भी तुम्हारे दबाव में आकर परमात्मा के नाम पर झूठी गवाही देने का पापकर्म तो मैं नहीं करूँगा ।''

मुखिया ने कहा : ''मुझे जानता है, मैं गाँव का पटेल हूँ, आगेवान हूँ, सर्व-सर्वा हूँ और मेरी पहुँच कहाँ तक है ? तू जानता है ? मेरी बात को इन्कार करके तू कैसे जियेगा ? कहाँ रहेगा ?''

खुदीराम : ''मैं जानता हूँ कि तुमसे दुश्मनी मोल लेना-मौत को आमंत्रण देना है । लेकिन मौत शरीर को मार डालेगी, मुझको नहीं । मैं अपनी आत्मा को खराब नहीं करूँगा । मैं झूठी गवाही नहीं दूँगा । तुम चाहे कुछ भी कर लो ।''

''मैं जानता हूँ कि तुमसे दुश्मनी मोल लेना मौत को आमंत्रण देना है । लेकिन मौत शरीर को मार डालेगी, मुझको नहीं । मैं अपनी आत्मा को खराब नहीं करूँगा । मैं झूठी गवाही नहीं दूँगा ।''

उस दुर्जन ने अपने षडयंत्र को गतिशील कर दिया । ऐसा भीषण वातावरण उत्पन्न कर दिया कि खुदीराम को अपनी सौ बीघा से भी अधिक जमीन-जागीरी, मकान आदि छोड़कर अपनी ननिहाल जाने पर मजबूर कर दिया ।

बाहर से तो खुदीराम विकल हुए और वह मुखिया अभागा सफल हुआ । इस क्षणिक सफलता के बाद उस बदमाश के पुत्र भी बदमाश होते गये । वे छोकरे हराम के धन को हराम में खर्चते थे एवं

अपनी बरबादी करते थे । उस बदमाश मुखिया को पुत्रों के खूब कष्टों को सहना पड़ा व अंत में वह मर गया । समय पाकर उसका पूरा कुल-खानदान बरबाद हो गया ।

सज्जनता एवं सच्चाई का फल ईश्वर कैसा देता है, देखिए । उन्हीं खुदीराम के घर श्रीरामकृष्ण परमहंस की आत्मा अवतरित हुई । विवेकानंद जैसे शिष्य श्रीरामकृष्ण के चरणों में पहुँचे और आज तक खुदीराम के पवित्र अन्न और पवित्र मन का प्रसाद परम्परा से सज्जन समाज को पहुँच रहा है ।

खुदीराम स्वयं तर गये तथा उन्होंने कइयों को तारने का मार्गदर्शन देनेवाले एक महान् योगी को अपने घर में जन्म दिया ।

मुखिया ने तो खुदीराम पर खूब जुल्म किये लेकिन करुणानिधि प्रभु ने खुदीराम पर कितनी करुणा कर दी ! पाप के धन से मुखिया के बेटे-बेटियाँ कुमार्गगामी हुए, जीते-जी भी वह अशांति की आग में जल मरा । अब कौन-से नरक में पड़ा होगा यह तो भगवान ही जानते होंगे । परंतु खुदीराम तो स्वयं तर गये तथा उन्होंने कइयों को तारने का मार्गदर्शन देनेवाले एक महान् योगी को अपने घर में जन्म दिया ।

इससे स्पष्ट है कि प्रभुकृपा की प्रतीक्षा नहीं, समीक्षा करनी चाहिए । प्रभु जो कुछ भी कर रहा है, वह सब उसकी कृपा ही है । केवल समीक्षा कीजिये । मान हो चाहे अपमान, मन चाहा कार्य हो या न हो, चाहे फिर जुल्म भी हो, प्रभुकृपा की समीक्षा ही कीजिये । मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि आप समीक्षा के नाम पर जुल्म सहते रहें, कंगाल हो जाएँ ।

चाहे हजारों मंदिरों-मस्जिदों-गिरजाघरों या गुरुद्वारों में जाओ, परन्तु जब तक तुम हृदय-मंदिर में आकर हृदयेश्वर की कृपा की समीक्षा नहीं करोगे तब तक मंदिर-मस्जिदों की, तीर्थों की यात्रा पूरी न होगी ।

अपनी ओर से आप यथायोग्य पुरुषार्थ करें लेकिन पुरुषार्थ के पीछे परमात्मा का हाथ देखना चाहिये । अपनी वासना, द्वेष, अहंकार या पलायनवादी स्वभाव का सहारा न लें । अपने व्यवहार के पीछे परमेश्वर की करुणा को आमंत्रित करो, परमेश्वर की कृपा निरन्तर बरस रही है । उसकी समीक्षा करोगे तो आपके जीवन में निर्भारता व निर्द्वन्द्वता का प्रसाद आ जाएगा ।

चाहे हजारों मंदिरों में जाओ, हजारों मस्जिदों-गिरजाघरों या गुरुद्वारों में जाओ, परन्तु जब तक तुम हृदय-मंदिर में आकर हृदयेश्वर की कृपा की समीक्षा नहीं करोगे तब तक मंदिर-मस्जिदों की, तीर्थों की यात्रा पूरी न होगी । जब तुम हृदय-मंदिर के हृदयेश्वर के करीब आने लगोगे तभी काबा-काशी की यात्रा पूरी होगी ।

ईश्वर की कृपा को सबमें देखना यह ईश्वर की कृपा की समीक्षा है । कृपा तो न जाने किस-किस रूप में बरस रही है । चाहे वह औषधि के रूप में बरसे या मिठाई के रूप में, मान के रूप में बरसे या अपमान के रूप में, सत्संग में जाने की प्रेरणा के रूप में बरसे या सत्संग में किन्हीं संकेतों के रूप में बरसे । हम अगर सजग रहकर देखेंगे तो दिन भर उस परमेश्वर की कृपा की वृष्टि ही वृष्टि दिखेगी तथा आपका मन परमेश्वरमय हो जाएगा, फिर प्रारब्धवेग से आपके पुण्य-पाप, सुख-दुःख व्यतीत होते जाएँगे । समीक्षा करते-करते जिसके विषय में समीक्षा कर रहे हैं, उस कृपालु के साथ आपके चित्त का तादात्म्य हो जाएगा ।

कितना सरल ! कितना मधुर उपाय है ! तुम्हारा मन ध्यान में लगता है तो बहुत अच्छा है, नहीं लगता है तो देखो कि 'मन नहीं लग रहा है ।' प्रार्थना करो : ''भगवान ! मेरा मन ध्यान में नहीं लगता, मैं क्या करूँ ? तू ही जान ।'' तुम रोओ : ''तेरी कृपा बरस रही है फिर भी मन नहीं लगता...'' तुम मन लगाने का आग्रह छोड़

दो और ऐसे ही बैठे रहो। 'नहीं लगता तो नहीं लगता, तेरी कृपा होगी तब लगेगा। हम बैठे हैं...'

ऐसे विचार करो, स्तोत्रपाठ करो, उस प्यारे की कृपा की समीक्षा करो, मन की समीक्षा करो, फिर तो उसी समय मन लग जाएगा। देखो मजा ! देखो चमत्कार !! शर्त यह है कि तुम ईमानदारी से उसके हो जाओ। समीक्षा करो उसकी कृपा की और तत्परता से लग जाओ।

❀

जीवन-शक्ति का विकास

युद्ध के मैदान में, दिग्मूढ़ की स्थिति में फँसे अर्जुन का मोह दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने जो ज्ञान दिया है वही 'श्रीमद्भगवद्गीता' के नाम से विख्यात है। श्रीमद्भगवद्गीता में अठारह अध्याय और सात सौ श्लोक हैं।

'गीता के एकाध श्लोक के पाठ से, हरि नाम का कीर्तन करने से और साधु पुरुषों के दर्शन से करोड़ों तीर्थ करने का फल मिलता है।'

आज के वैज्ञानिक कहते हैं, डॉक्टर डायमन्ड भी कहता है कि डिस्को डाँस करने से जीवन-शक्ति का ह्रास होता है और भारतीय पद्धति से कीर्तन करने से जीवन-शक्ति का विकास होता है।

हमारे शरीर में मूलाधार केन्द्र के पास शक्ति का पुंज है। वहाँ पर जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों को लेकर कुण्डलिनी शक्ति सुषुप्तावस्था में रहती है। वह जब जागती है और जितने अंशों में विकसित होती है उतना ही हमारा जीवन महान् बनता है। जब आप 'हरि' बोलते हैं तब नाभि केन्द्र में, हृदय केन्द्र में और कुछ अन्य केन्द्रों में उसके आन्दोलन पैदा होते हैं। जैसे पानी की भरी थाली में अथवा किसी जलाशय में जब कंकर डालते हैं तो गोल-गोल या कुण्डलाकार आकृति उत्पन्न होती है, वैसे ही भगवन्नाम के उच्चारण से हमारे सात केन्द्रों में अलग-अलग ढंग से आन्दोलन उत्पन्न होते हैं। उनका विकास होता है।

जैसे गंगा में आप प्रेम से, श्रद्धा से हाथ डालो तब भी गंगा शीतलता देती है और जबरदस्ती डालो तब भी गंगा शीतल ही करती है। आप गंगा में जानबूझकर डुबकी मारो तब भी गंगा आपको ठंडक देती है और कोई आपको पकड़कर डुबाये तब भी गंगा ठंडक ही देती है। ऐसे ही भगवान का नाम आप कैसे भी लो, सदैव कल्याण ही करता है। तुलसीदासजी कहते हैं :

भाँय-कुभाँय अनघ आलसहु।
नाम लेत मंगल दिसी दसहु॥

भगवन्नाम से आपकी रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है, अनुमानशक्ति जागती है, स्मरणशक्ति और शौर्यशक्ति का विकास होता है। पहले के गुरुकुलों में लौकिक विद्या के साथ-साथ विद्यार्थी की सुषुप्त शक्ति भी जाग्रत हो ऐसी व्यवस्था थी। इसीलिए गुरुकुल में पढ़ा हुआ विद्यार्थी प्रमाणपत्र लेकर नौकरी के लिए धक्के नहीं खाता था। जहाँ भी, जिस क्षेत्र में भी जाता, सफलता ही अर्जित करता था। आज कल तो बेचारे कई जवान प्रमाणपत्र लेकर घूमते रहते हैं किन्तु नौकरी के ठिकाने नहीं होते। नौकरी मिलने पर भी ट्रान्सफर और प्रमोशन का प्रॉब्लम तो रहता ही है।

जीवन में निर्भयता होनी चाहिए। जीवन ढीला-ढाला और सुस्त नहीं होना चाहिए। तन और मन दोनों मजबूत होने चाहिए। प्रसन्नता एवं पुरुषार्थ होना चाहिए। मन में सच्चाई और साहस होना चाहिए।

जीवन में दैवी गुण जितने अधिक विकसित होते हैं उतना ही उस आत्म-परमात्मदेव का ज्ञान, शांति और आनंद चमकता है। निर्भयता, अहिंसा, सत्य,

भगवन्नाम से आपकी रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है, अनुमानशक्ति जागती है, स्मरणशक्ति और शौर्यशक्ति का विकास होता है।

संध्याकाल में ध्यान करना चाहिए। उस समय ध्यान करने से बुद्धि की रक्षा होती है।

अक्रोध, आचार्य-उपासना, सहिष्णुता आदि सब दैवी गुण हैं । इन दैवी गुणों के विकास के लिये जप, ध्यान, प्राणायाम, प्राकृतिक वातावरण, सात्त्विक भोजन ये सब मददरूप होते हैं । इनसे जीवन-शक्ति का भी विकास होता है ।

अपने विचारों को, अपने जीवन को किस दिशा में मोड़ना और कैसे मोड़ना इसकी भी विधि होती है । संध्याकाल में ध्यान करना चाहिए । उस समय ध्यान करने से बुद्धि की रक्षा होती है । जो लोग ब्राह्ममुहूर्त में भी सोते रहते हैं और उम्रलायक लड़के (१४ वर्ष से बड़े) यदि सावधान न रहें तो उनका जो तेज है, वीर्य है वह स्खलित हो जाता है । ब्राह्ममुहूर्त में उठने से वीर्यरक्षा होती है । जैसे गन्ने में रस होता है वैसे ही अपनी रगों में ओज होता है । जिस समय नक्षत्र दिखते हों, तारे दिखते हों उस समय नहा लेना चाहिए ।

सूर्योदय के समय प्राणायाम और सूर्य की किरणों का स्नान- ये भी स्वास्थ्य की रक्षा करता है, बुद्धि का विकास करता है । सूर्योदय के समय कभी-कभी अपने हाथ से शरीर को रगड़ना चाहिए । सूर्य की किरणें पड़े इस तरह से शरीर को रगड़ें । इससे स्वास्थ्य में वृद्धि होती है ।

हमारे शरीर में मूलाधार केन्द्र के पास शक्ति का पुंज है । वहाँ पर जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों को लेकर कुण्डलिनी शक्ति सुषुप्तावस्था में रहती है । वह जब जागती है और जितने अंशों में विकसित होती है उतना ही हमारा जीवन महान् बनता है ।

आहार पर भी ध्यान देना चाहिए । अशुद्ध खुराक खाने से जीवन-शक्ति का ह्रास होता है । कितने ही लोग जैसे-तैसे व्यक्तियों के हाथ से जैसा-तैसा खा लेते हैं, यह उचित नहीं है । आचारहीन मनुष्य के हाथ का अन्न खाने से नुकसान होता है । पवित्र मनुष्य के हाथ का अन्न खाने से उनके विचार अपने को मिलते हैं । भोजन करते समय जो जल्दी-जल्दी खाता है उसमें खिन्नता बढ़ती है । किन्तु जो चबा-चबाकर भोजन करता है उसकी बुद्धि शक्ति विकसित होती है और पाचनतंत्र ठीक रहता है ।

❀

(पृष्ठ २९ का शेष)

स्वप्नदोष आदि रोगों में बड़ का दूध अत्यंत लाभकारी है । प्रातः सूर्योदय के पूर्व वायुसेवन के लिये जाते समय २-३ बताशे साथ में ले जायें ।

बड़ की कली को तोड़कर एक-एक बताशे में बड़ के दूध की ४-५ बूँद टपकाकर खा जायें । धीरे-धीरे बड़ के दूध की मात्रा बढ़ाते जायें । ८-१० दिन के बाद मात्रा कम करते-करते अपनी शुरूवाली मात्रा पर आ जायें । कम-से-कम चालीस दिन यह प्रयोग करें ।

बड़ का दूध दिल, दिमाग व जिगर को शक्ति प्रदान करता है एवं मूत्र रुकावट (मूत्रकृच्छ) में भी आराम होता है । इसके सेवन से रक्तप्रदर व खूनी बवासीर का रक्तस्राव बन्द होता है । पैरों की एड़ियों में बड़ का दूध लगाने से वे नहीं फटतीं । चोट, मोच और गठिया रोग में इसकी सूजन पर इस दूध का लेप करने से बहुत आराम होता है ।

मुफ्त में उपलब्ध यह दूध अच्छे-से-अच्छे बलवीर्यवर्द्धक नुस्खे की बराबरी कर सकता है । वीर्य-विकार व कमजोरी के शिकार रोगियों को धैर्य के साथ लगातार ऊपर बताई विधि के अनुसार इसका सेवन करना चाहिये ।

बड़ की छाल का काढ़ा बनाकर प्रतिदिन एक कप मात्रा में पीने से मधुमेह (डायबिटीज) में फायदा होता है व शरीर में बल बढ़ता है ।

उसके कोमल पत्तों को छाया में सुखाकर कूट-पीस लें । आधा लिटर पानी में एक चम्मच चूर्ण डालकर काढ़ा करें । जब चौथाई पानी शेष बचे तब उतारकर छान लें और पिसी मिश्री मिलाकर कुनकुना करके पियें । यह प्रयोग दिमागी शक्ति बढ़ाता है व नजला-जुकाम ठीक करता है ।

❀

भक्त सुदामा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

राग-द्वेष की परंपरा सृष्टि के आदि काल से चलती आ रही है । यह सृष्टिकर्त्ता की व्यवस्था है । भगवान मित्र देकर हमारा विषाद दूर करते हैं और शत्रु देकर हमारा अहंकार दूर करते हैं ।

कोई आपसे मित्र जैसा व्यवहार करे तो आसक्त नहीं हो जाना । उसमें रहे हुए मित्रभाव को प्रणाम करना कि भगवान प्रेरणा देकर मित्रता का व्यवहार दिखाते हैं और कोई शत्रु जैसा व्यवहार करे तो उसके प्रति द्वेष-भाव न रखना ।

> *जीवन में कोई भी परिस्थिति आये उसमें गुणग्राह्य दृष्टि रखो तो सुखी जीवन जी सकोगे ।*

जीवन में कोई भी परिस्थिति आये उसमें गुणग्राह्य दृष्टि रखो तो सुखी जीवन जी सकोगे । भगवान श्रीकृष्ण के बालसखा सुदामा का जीवन भी ऐसे ही बीता । वे प्रत्येक परिस्थिति में गुणग्राह्य दृष्टि ही रखते थे एवं संतोषी जीवन बिताते थे ।

> *जैसे ही श्रीकृष्ण ने द्वारपाल से सुना वैसे ही सिंहासन छोड़कर वे सुदामा से मिलने दौड़ पड़े और सुदामा को देखते ही श्रीकृष्ण उनके गले लग गये । नेत्रों में से हर्ष के आँसू बह निकले ।*

सुदामा गरीब ब्राह्मण थे । उनकी धर्मपत्नी थी सुशीला । जैसा नाम वैसे ही उसके गुण थे । वह गरीबी में भी संतोष से जीवन बिताती थी लेकिन अयाचक व्रत के कारण सुदामा को कई बार भूख की पीड़ा सहनी पड़ती थी, यह देखकर सुशीला को बहुत दुःख होता था । सुदामा के बालसखा भगवान श्रीकृष्ण के विषय में वह जानती थी ।

एक बार उसने बहुत आग्रह करके सुदामा को श्रीकृष्ण के पास जाकर अपने हाल सुनाने के लिए तैयार कर लिया । उसे विश्वास था कि दीनबंधु भगवान श्रीकृष्ण अपने मित्र की अवश्य मदद करेंगे । सुदामा को धन लेने की कोई कामना न थी किन्तु पत्नी के बार-बार कहने पर वे द्वारिका गये । वहाँ लोगों से पूछते-पूछते श्रीकृष्ण के महल पर पहुँचे ।

सुदामा के फटे वस्त्र व कृशकाय को देखकर द्वारपाल ने द्वार पर ही उन्हें रोक दिया । उस अकिंचन दरिद्र ब्राह्मण को द्वारपाल भला महल के अंदर कैसे जाने देता ?

तब सुदामा ने कहा : ''जाओ और श्रीकृष्ण से कहो कि आपका बचपन का सखा, सहपाठी सुदामा आया है ।''

जैसे ही श्रीकृष्ण ने द्वारपाल से सुना वैसे ही सिंहासन छोड़कर वे सुदामा से मिलने दौड़ पड़े और सुदामा को देखते ही श्रीकृष्ण उनके गले लग गये । नेत्रों में से हर्ष के आँसू बह निकले । फिर भगवान बहुत प्रेम से उन्हें अपने साथ महल के भीतर ले गये और उनके पैर पखारने लगे । सुदामा के पैर में लगे काँटों को निकाला । गंदे-फटे कपड़े एवं पैरों में पड़े हुए छालों को देखकर सुदामा की दरिद्रता का अनुमान करके प्रभु श्रीकृष्ण का हृदय भर आया । उनके नेत्रों में से निकले अश्रुओं से मानो सुदामा के चरण धुल गये । भगवान की भाव-विह्वल दशा और मित्र-प्रेम को देखकर सब चकित हो गये कि कहाँ तो सर्व ऐश्वर्यों से युक्त भगवान श्रीकृष्ण और कहाँ गरीब ब्राह्मण सुदामा !

भोजन से निवृत्त होकर दोनों मित्र अपने बचपन के संस्मरणों को याद करते हुए मधुर वार्तालाप कर रहे थे तब भगवान श्रीकृष्ण ने घर के कुशलक्षेम

पूछते हुए सुदामा से कहा :

''मित्र ! भाभी ने मेरे लिए क्या भेंट दी है ?''

भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य को देखकर सुदामा को संकोच होने लगा और पत्नी द्वारा दी गई फटे-पुराने कपड़े में बँधी तांदुल की गठरी को वे बगल में छुपाने लगे। सुदामा को गठरी छुपाते देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं ही वह गठरी खींच ली और मुट्ठी भरकर तांदुल खाने लगे एवं उसकी मिठास की प्रशंसा करने लगे ।

अंतर्यामी श्रीकृष्ण ने जान लिया था कि सुदामा मेरा निष्काम प्रेमी भक्त है, उसकी अपनी कोई कामना नहीं है । अयाचक व्रत का पालन करनेवाला सुदामा केवल पत्नी के आग्रहवशात् ही यहाँ आया है । मैं उसको ऐसी संपत्ति दूँगा कि उसकी दरिद्रता सदा के लिए दूर हो जायेगी । यह सोचकर एक मुट्ठी तांदुल के बदले में देवताओं को भी दुर्लभ ऐसी संपत्ति का उन्होंने सुदामा को दान कर दिया जिसका पता तक सुदामा को नहीं चला ।

थोड़े दिन वहाँ बड़े प्रेम से रहकर जब सुदामा घर जाने लगे तब प्रत्यक्ष रूप से भगवान ने उन्हें कुछ न दिया और यहाँ तक कि सुदामा को पहनाया गया उत्तरीय वस्त्र भी वापस ले लिया । फिर भी सुदामा को इस बात का जरा-सा भी दुःख नहीं हुआ ।

उनके मन में तो धन की कामना थी ही नहीं । अतः वे विचारने लगे क़ि 'भगवान कितने दयालु हैं ! उनको हुआ होगा कि धन पाकर मेरा यह भक्त कहीं माया में न फँस जाये और मुझे न भूल जाये । इसीलिए धन नहीं दिया होगा । अपना उत्तरीय वस्त्र भी उस करुणावतार ने इसीलिए वापस ले लिया होगा जिससे कोई ऐसा न कहे कि धनवान मित्र के पास से सुदामा कुछ ले जाता है... मेरे जैसे गरीब ब्राह्मण के प्रति भी उनके हृदय में कितनी करुणा और कितना प्रेम है ! उस त्रिभुवनपति ने मुझ दास का कैसा भव्य आदर-सत्कार किया ! जिनकी चरण-सेवा से मनुष्य चारों पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सहज ही में पा सकता है ऐसे श्रीहरि ने रुक्मिणीजी सहित मेरे चरण धोये ! कैसी अद्भुत विनम्रता ! धन्य प्रभु ! धन्य...!'

प्रभुमिलन के आनंद की मधुर पलों को याद करते-करते वे घर की ओर जाने लगे ।

"नाथ ! आप उधर भगवान श्रीकृष्ण के पास गये और इधर हम ऋद्धि-सिद्धि एवं धन-धान्य से भरपूर हो गये । यह उन्हीं द्वारिकाधीश भगवान श्रीकृष्ण की करुणा है ।"

घर पहुँचते ही सुदामा ने देखा कि उनकी टूटी-फूटी झोंपड़ी की जगह एक भव्य महल खड़ा है । क्षणभर के लिए उन्हें हुआ कि 'क्या मैं मार्ग भूल गया हूँ ?...'

इतने में उनकी धर्मपत्नी सुशीला महारानियों की तरह सजी-धजी वेशभूषा में बाहर आयी और उसने सुदामा का स्वागत किया ।

सुदामा ने पूछा : ''यह महल कैसे आया और तेरी यह महारानियों जैसी वेशभूषा कैसे हुई ?''

सुशीला : ''नाथ ! आप उधर भगवान श्रीकृष्ण के पास गये और इधर हम ऋद्धि-सिद्धि एवं धन-धान्य से भरपूर हो गये । यह उन्हीं द्वारिकाधीश भगवान श्रीकृष्ण की करुणा है ।''

जो राग और द्वेष की वृत्ति से ऊपर उठकर गुणग्राह्य दृष्टि रखकर जीवन बिताते हैं, वे श्रीहरि के गुणगान गाते हुए भगवान की भक्ति पाकर अपना जीवन धन्य बनाते हैं ।

सुदामा ने द्वारिका से जब विदा ली तब भगवान द्वारा दिया गया उत्तरीय वस्त्र ले लेने पर सुदामा ने सोचा था कि 'भगवान कितने करुणानिधि हैं ! मित्र की टीका न हो, इसका कितना ख्याल रखते हैं !' और अब धन-धान्य एवं ऐश्वर्य से भरपूर महल को देखकर भी वे सोचते हैं कि 'भगवान कितने दयालु हैं... कृपालु हैं ! मेरा भक्त खाने-पीने की चिंता में कहीं मेरा भजन न भूल

(शेष पृष्ठ ६ पर)

प्रभु प्रेम जगा देना...

गुरु हम. पे दया करना ।
गुरु हम पे कृपा करना ॥
तेरे दर पे आये हैं ।
अपनी करुणा कृपा करना ॥

हम भूले हुए हैं राही, मंजिल से बेखबर हम।
गुरु रहमत करके अपनी, प्रभु राह दिखा देना॥
गुरु....

सदियों से सो रहे हैं, सपनों के इस जहाँ में।
देकर परम सहारा, अविद्या से जगा देना॥
गुरु...

जड़ जीवन पत्थर सम, निज ज्ञान को क्या जाने ।
शिल्पी बनके गुरुवर, प्रतिमा तुम बना देना॥
गुरु...

काया नगर में रहकर, 'स्व' को न जान पाया।
खोलो द्वार मम दिल के, दिलबर से मिला देना॥
गुरु...

नश्वर में खो गए हैं, विषयों ने है जो घेरा।
देकर शाश्वत सुख को, प्रभु प्रेम जगा देना॥
गुरु...

माया में रमता मनवा, रामनाम रस क्या जाने।
श्रीहरि ध्यान के रंग में, इस मन को रंगा देना॥
गुरु...

दीदार की है प्यासी, अँखियाँ तेरे दरस को।
नजरों से पिला हरिजाम, आनंद छलका देना॥
गुरु...

'साक्षी' गुरु चरणों में, वंदन हो बार-बार।
प्रभु जीवन नैया को, भव पार लगा देना॥
गुरु...

❀

पू. बापू के आगामी सत्संग कार्यक्रम

(१) मुजफ्फरनगर में गीता-भागवत सत्संग समारोह : १९ से २२ जून १९९७.

(२) गुरुपूर्णिमा महोत्सव इन्दौर, दिल्ली और अमदावाद में :

(अ) इन्दौर में : १६ और १७ जुलाई १९९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, खंडवा रोड़, बिलावली तालाब के पास, इन्दौर। फोन : ४७८०३१, ६३०६८.

(ब) दिल्ली में : १८ जुलाई १९९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, वंदे मातरम् रोड़, रवीन्द्र रंगशाला के सामने, न्यू दिल्ली-६०. फोन : ५७२९३३८, ५७६४१६१.

(क) अमदावाद में : २० जुलाई १९९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५. फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा विद्यार्थियों के लिये राहत दर की कॉपियाँ

पूंज्य बापू के पावन संदेशों से युक्त, प्रेरणादायी रंगीन चित्रों से अति आकर्षक डिजाइनों में, लेमीनेशन से सुसज्ज मुख्य पृष्ठों से युक्त, सुपर डीलक्स क्वालिटी के कागज पर निर्मित की गई एवं हर पृष्ठ पर विभिन्न सुवाक्योंवाली कॉपियाँ (Note Books एवं Long Note Books) उपलब्ध हैं। **विशेष :** २०० पृष्ठ की दो डजन Long Note Books की खरीदी पर एक ऑडियो कैसेट भेंट दी जाएगी तथा एक डजन की खरीदी पर निम्न लिखित पुस्तकों में से कोई भी एक पुस्तक भेंट दी जाएगी : (१) ईश्वर की ओर (२) यौवन सुरक्षा (३) महान नारी (४) तू गुलाब होकर महक (५) श्रीगुरुगीता (६) योगयात्रा

आप आज ही सम्पर्क करें : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२. **नोट :** माल स्टॉक में होगा तब तक प्राप्त हो सकेगा ।

खुदा की खुदाई

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक मुल्लाजी प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन के बीच उन्होंने कहा : ''खुदा की खुदाई को कोई नहीं जानता।'' यह बात जुन्नेद के एक सिंधी मित्र के कान पर पड़ी। सिंधी मित्र वेदान्ती था। वह गया मुल्लाजी के पास और बोला : ''मुल्लाजी ! राम-राम।''

मुल्लाजी : ''तुम सिंधी हो ?''

सिंधी : ''हाँ, मैं अपने मित्र जुन्नेद से मिलने आया था। मैंने आपका प्रवचन सुना। आपने और सब तो जो कहा सो कहा लेकिन 'खुदा की खुदाई को कोई नहीं जानता' यह कहने से लोगों की लघुताग्रंथि पक्की हो जायेगी। उनके ज्ञान का विकास नहीं हो पायेगा।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

हमारी गीताजी में कहा है कि समझ में न आये तो प्रश्नोत्तरी करके भी ज्ञान बढ़ाओ। 'खुदा की खुदाई को कोई नहीं जानता' यह बात मेरी समझ में नहीं आयी है, आप माफ करना।''

मुल्लाजी : ''क्या तुम खुदा की खुदाई को जानते हो ?''

सिंधी : ''हाँ।''

मुल्लाजी : ''जानते हो तो दिखाओ।''

सिंधी : ''दिखा दूँ तो ?''

मुल्ला : ''दिखा दो तो लग गई शर्त सौ रूपये की और यदि नहीं दिखा पाये तो ?''

सिंधी : ''तो मैं आपको सौ रूपये दूँगा।''

मुल्ला : ''जामिन कौन ?''

सिंधी : ''मेरा जामिन जुन्नेद।''

जुन्नेद : ''क्यों सौ रूपये का पानी करते हो दोस्त ? माफी माँग लो।''

सिंधी : ''माफी क्यों माँगें ? खुदा की खुदाई को कोई कैसे नहीं जानता ? मैं खुदा की खुदाई को जानता हूँ। तू जामिन हो जा, हाँ बोल दे, पचास रूपये तेरे।''

जुन्नेद : ''हार गये तो ?''

सिंधी : ''तेरे से नहीं लूँगा। तू हाँ तो बोल।''

मुसलमान जुन्नेद और सिंधी आपस में मित्र थे। बात पक्की हो गयी।

सिंधी मुल्लाजी से बोलता है : ''चलो मेरे साथ, में खुदा की खुदाई दिखाता हूँ।''

वे लोग चल पड़े तो उनके साथ जो कथा सुन रहे थे वे १००-१५० श्रोता भी चल पड़े।

उस समय मजहब (धर्म) को लेकर ज्यादा खींचातानी नहीं होती थी। सिंधी ने सब लोगों से कहा :

''अपना मजहब और पराया मजहब करके पक्षपात करना यह खुदा के दरबार में गुनहगार होना है। आप लोग सत्य जिसका हो उसका ही पक्ष लेना। ऐसा मत सोचना कि ये हमारें हैं और ये पराये हैं।''

> ***''चलो मेरे साथ, में खुदा की खुदाई दिखाता हूँ।''***

उन सबने मिलकर कहा : ''नहीं नहीं, यदि तुम्हारी बात सत्य होगी तो हम सब मिलकर तुम्हारा ही पक्ष लेंगे।''

सिंधी ले गया उन सबको सिंधु नदी के किनारे और बोला : ''यह जो सिंधु नदी बह रही है यह खुदा की ही खुदाई है।''

मुल्ला : ''क्या यह खुदा की खुदाई है ?''

सिंधी : ''खुदा की खुदाई नहीं है तो क्या मुल्लाजी ! आपने खुदाई है ? आपके बाप ने खुदाई है ? या किसी दूसरे ने खुदाई है ? बोलो। यह खुदा की ही खुदाई है कि नहीं ?''

लोगों ने कहा कि बात तो सच्ची है। मुल्लाजी ने सौ रूपये सिंधी को दे दिये। अब तो मुल्लाजी को लगा कि सिंधी के बच्चे को सीधा करूँगा। वह

जुन्नेद को रोज कथा में बुलाता था । दो सप्ताह के बाद सिंधी फिर पहुँचा कथा में । उस वक्त मुल्ला ने कहा : ''इन्सान के दिल की बात कोई नहीं जानता ।''

सिंधी ने प्रवचन पूरा होने के बाद मुल्लाजी से कहा : ''आज आपने यह कैसे कह दिया कि इन्सान के दिल की बात कोई नहीं जानता ?''

मुल्लाजी को पिछली शर्त हार जाने का गुस्सा था ही । वे बोले : ''हाँ, कोई नहीं जानता । क्या तुम जानते हो ?''

सिंधी : ''हाँ, मैं जानता हूँ ।''

मुल्ला : ''लगी दो सौ की शर्त ?''

सिंधी : ''आप भले चार सौ की शर्त लगा लो ।''

मुल्ला : ''ठीक है । पहले के सौ वापस ले लेंगे और तीन सौ ज्यादा कमा लेंगे । मगर तुम इन्सान के दिल की बात जानते हो ?''

सिंधी : ''हाँ, जानता हूँ ।''

मुल्ला ने सोचा कि यदि यह सचमुच जानता होगा फिर भी इसको झूठा साबित कर देंगे । यदि सच्चा बतायेगा तो भी मैं बोल दूँगा कि यह मेरे मन की बात नहीं है । आज मैं झूठ बोलकर भी जीत जाऊँगा ।

मुल्ला बोला : ''अच्छा, मेरे मन की बात बताओ ।''

सिंधी समझ गया कि इसके मन की बात बताऊँगा तब भी स्वीकार नहीं करेगा । किन्तु वह भी पीछे हटनेवाला न था । वह थोड़ा-सा शांत हो गया और उसने युक्ति से मुक्ति खोज ली ।

सिंधी बोला : ''मुल्लाजी ! आपके मन की केवल एक बात ही नहीं, चार सौ की शर्त लगायी है तो चार बातें बता सकता हूँ । चारों की चार बातें सच्ची होगी । चार में से यदि एक भी झूठी हो तो तुम हजार रूपये और भी ले सकते हो ।''

ऐसा कहकर सिंधी ने मुल्ला का मनोबल थोड़ा कमजोर कर दिया ।

मुल्ला : ''अच्छा अच्छा, बताओ ।''

सिंधी : ''आप सदा राजा साहब की खैर चाहते हो, कभी-भी आपके मन में ऐसा नहीं आता कि राजा साहब मर जायें ।''

अब मुल्ला मुकरे कैसे ? 'राजा साहब की खैर नहीं चाहता हूँ' ऐसा बोले तो मुसीबत में पड़ता है । मुल्ला को मानना पड़ा ।

सिंधी : ''दूसरी बात यह है कि जो लोग आपका प्रवचन सुनने आते हैं उनका आप भला चाहते हैं । आप चाहते हैं कि वे सब नेक इन्सान बनें । कोई बदमाश न हो, सबका भला हो । यह आप चाहते हो, यह बात मैं दावे से कहता हूँ । झूलेलाल भगवान की कसम खाकर कहता हूँ ।''

''आप चाहते हैं कि आपके मरने के बाद लोग आपकी नेकी गायें । आपसे कोई ऐसा बुरा काम न हो कि आपकी मृत्यु के समय आप पर धब्बा लगे ।''

इस बार भी मुल्ला कैसे मुकरे ? उसे स्वीकार करना पड़ा । वह बोला : ''अच्छा, अब दो बातें और बताओ ।''

मुल्ला ने सोचा चलो, दो बातें तो इसकी माननी पड़ी । अब बाकी की दो बातों में मैं इन्कार कर दूँगा । लेकिन करे तो कैसे करे ?

सिंधी : ''आप सदा चाहते हो कि आपके कुटुम्बी भी कुराने शरीफ की आज्ञा के अनुसार अपनी नेक जिन्दगी गुजारे । नमाज पढ़ते रहें । लोगों के लिए आदर्श बनें । ऐसा नहीं कि शैतान की तरह जिन्दगी बितायें ।''

अब मुल्ला ना कैसे कहता ? बोला : ''अब चौथी बात बता दो ।''

मुल्लाजी ने सोचा कि इन तीन बातों के लिए तो 'हाँ' करनी पड़ी किन्तु चौथी के लिए तो 'ना' बोल ही दूँगा और शर्त जीत जाऊँगा ।

सिंधी : ''आप यह भी सदा चाहते हैं कि आपके मरने के बाद लोग आपकी नेकी गायें । आपसे कोई ऐसा बुरा काम न हो कि आपकी मृत्यु के समय आप पर धब्बा लगे । लोग आपको खुदा का प्यारा मानें, ऐसा सज्जनता का काम आप करना चाहते हैं ।''

सिंधी सांई की विचारयुक्त बातों के आगे मुल्ला मुकर नहीं सका । वह बोला : ''भाई ! मान गया

मैं तो, ये लो चार सौ रूपये ।''

दस-बारह सप्ताह के बाद फिर सिंधी आया । मुल्लाजी उस समय कह रहे थे कि : ''फलाने दिन कयामत होगी और सब मर जायेंगे । इसलिए जल्दी से नेक काम कर लो ।''

सिंधी : ''यह संभव नहीं है ।''

मुल्ला : ''संभव कैसे नहीं है ? फलाने दिन कयामत (प्रलय) हो ही जायेगी । दूसरी बात यह है कि आसमान में कितने तारे हैं यह कोई नहीं जानता ।''

सिंधी : ''मैं जानता हूँ ।''

मुल्ला : ''तीसरी बात भी सुन लो कि पृथ्वी का मध्यबिन्दु कोई नहीं जानता ।''

सिंधी : ''मैं जानता हूँ ।''

मुल्ला : ''अच्छा... सिंधी ! पाँच सौ ले गये हो, अब हजार रूपये वापस देने पड़ेंगे ।''

सिंधी : ''लग गई हजार रूपये की शर्त ।''

जुन्नेद अपने सिंधी मित्र से कहता है : ''क्यों गँवाते हो यार ! हजार रूपये कैसे जीतेंगे ? फलाने दिन तो कयामत हो ही जायेगी ।''

सिंधी : ''अरे पगले ! कयामत हो जायेगी तो लेनेवाला भी मर जायेगा, माँगेगा कहाँ ? अगर नहीं हुई तो जीत जायेंगे । कमाई का धंधा है ।''

मुल्ला : ''बताओ, आकाश में तारे कितने हैं ?''

सिंधी : ''यह जो काली गाय खड़ी है उसके शरीर पर जितने बाल हैं, ठीक उतने ही आकाश में तारे हैं ।''

मुल्ला : ''कैसे ?''

सिंधी : ''आप गिन लो । कम-ज्यादा हुए तो हम जिम्मेदार हैं ।''

मुल्लाजी क्या गिनते ? हार मान ली । फिर बोले : ''पृथ्वी का मध्यबिन्दु कोई नहीं जानता ।''

सिंधी ने उठाया डण्डा और वहीं पर एक जगह रखते हुए बोला : ''यही पृथ्वी का मध्यबिन्दु है ।''

मुल्ला : ''कैसे ?''

सिंधी : ''आप पूरी पृथ्वी नपा लीजिए, यही मध्यबिन्दु मिलेगा ।''

पृथ्वी एक गेंद की तरह है । गेंद पर कहीं भी निशान लगा दो, वही उसका मध्यबिन्दु होता है ।

मुल्ला को अब भी हार माननी पड़ी । फिर वह बोला : ''अभी एक बात बाकी है । फलाने दिन कयामत होगी ।''

सिंधी : ''नहीं होगी ।''

कयामत का दिन बीत गया, रात बीत गयी ।

सिंधी पहुँचा मुल्लाजी के पास और बोला : ''राम-राम, मुल्लाजी ! कयामत नहीं हुई है, हजार रूपये निकालिए ।''

मुल्लाजी ने हजार रूपये दे दिये । इस प्रकार कुल मिलाकर मुल्लाजी पंद्रह सौ रूपये हार गये ।

सिंधी : ''मुल्लाजी ! अगर आपका दिल दुःखता है तो हम रूपये वापस दे सकते हैं ।''

मुल्ला : '' नहीं नहीं । लोग क्या कहेंगे ? हम वापस नहीं लेंगे ।''

सिंधी ने जुन्नेद से कहा : ''साढ़े सात सौ रूपये का मैं साधु-संत-महात्माओं में भण्डारा करवाऊँगा । मुझे ये रूपये नहीं चाहिए ।''

साढ़े सात सौ रूपये के गहने बनवाकर जुन्नेद की बहू को दे दिये और साढ़े सात सौ रूपये सिंधु नदी के किनारे भजन करनेवाले साधु-संतों की सेवा में लगा दिये । संत-महापुरुषों की सेवा भी हो गयी और आनेवाले भक्तों को प्रसाद भी मिल गया । सिंधी का हृदय भी पवित्र हो गया ।

अपनी बुद्धि का सदा आदर करना चाहिए । किसीसे वैर नहीं बाँधना चाहिए । साथ ही मूर्खता भी नहीं होनी चाहिए । कोई हमें मूर्ख बनाकर अपना कार्य साध ले ऐसा नहीं होना चाहिए । हम उदार हों, सज्जन हों, स्नेही हों, हमारा व्यवहार मधुर हो लेकिन उसके साथ हम सतर्क, कुशल और शूरवीर भी बनें । मूर्ख न बनें, कायर न रहें । न बुद्धि की मंदता हो, न शारीरिक कायरता हो । तभी आप एक सफल जीवन जी सकते हैं । सफल जीवन के लिए बुद्धि का आदर करनेवाले जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष का सत्संग करना चाहिए ।

"अरे पगले ! कयामत हो जायेगी तो लेनेवाला भी मर जायेगा, माँगेगा कहाँ ? अगर नहीं हुई तो जीत जायेंगे । कमाई का धंधा है ।"

साधना-सुरक्षा : व्यसनमुक्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक बार घूमते-घूमते कालिदास बाजार गये । वहाँ एक महिला बैठी मिली । उसके पास एक मटका था और कुछ प्यालियाँ पड़ी थीं । कालिदास ने उस महिला से पूछा : ''क्या बेच रही हो ?''

महिला ने जवाब दिया : ''महाराज ! मैं पाप बेचती हूँ ।''

कालिदास ने आश्चर्यचकित होकर पूछा : ''पाप और मटके में ?''

महिला बोली : ''हाँ, महाराज ! मटके में पाप है ।''

कालिदास : ''कौन-सा पाप है ?''

महिला : ''आठ पाप इस मटके में हैं । मैं चिल्लाकर कहती हूँ कि मैं पाप बेचती हूँ पाप... और लोग पैसे देकर पाप ले जाते हैं ।''

अब महाकवि कालिदास को और आश्चर्य हुआ : ''पैसे देकर लोग पाप ले जाते हैं ?''

महिला : ''हाँ, महाराज ! पैसे से खरीदकर लोग पाप ले जाते हैं ।''

कालिदास : ''इस मटके में आठ पाप कौन-कौन से हैं ?''

महिला : ''क्रोध, बुद्धिनाश, यश का नाश, स्त्री एवं बच्चों के साथ अत्याचार और अन्याय, चोरी, असत्य आदि दुराचार, पुण्य का नाश और स्वास्थ्य का नाश... ऐसे आठ प्रकार के पाप इस घड़े में हैं ।''

कालिदास को कौतूहल हुआ कि यह तो बड़ी विचित्र बात है । किसी भी शास्त्र में नहीं आया है कि मटके में आठ प्रकार के पाप होते हैं । वे बोले : ''आखिरकार इसमें क्या है ?''

महिला : ''महाराज ! इसमें शराब है शराब !''

कालिदास महिला की कुशलता पर प्रसन्न होकर बोले : ''तुझे धन्यवाद है ! शराब में आठ प्रकार के पाप हैं यह तू जानती है और 'मैं पाप बेचती हूँ' ऐसा कहकर बेचती है फिर भी लोग ले जाते हैं । धिक्कार है ऐसे लोगों को !''

जो लोग बीड़ी या सिगरेट पीते हैं तो बीस मिनट के अंदर ही उनके शरीर में निकोटीन नामक जहर फैल जाता है । बीड़ी पीनेवाले व्यक्ति के साथ कमरे में जितने व्यक्ति होते हैं उन्हें भी उतनी ही हानि होती है जितनी हानि बीड़ी पीनेवाले व्यक्ति को होती है ।

बीड़ी कहे मैं यम की मासी ।
एक हाथ खड्ग, दूसरे हाथ फाँसी ॥

बीड़ी पीनेवाला मनुष्य खुद की आयु तो नष्ट करता ही है, साथ ही साथ अपने पासवालों के जीवन को भी नष्ट करने का पाप अपने सिर पर लेता है । एक बीड़ी पीने से छः मिनट की आयुष्य का नाश होता है । फिर भी लोग पैसे देकर मुँह में आग भरते हैं, धुआँ भरते हैं । कितने बुद्धिमान हैं वे लोग !

समर्थ रामदास कहते हैं कि एक माला करने से जो सात्त्विकता पैदा होती है वह एक बीड़ी पीने से नष्ट हो जाती है । बीड़ी पियो, तम्बाकू खाओ या तपकीर (नास, छींकणी) मुँह में भरो इनसे बहुत हानि होती है ।

किसी व्यक्ति ने मुझे पत्र लिखा : 'बापू ! आप कहते हैं कि बीड़ी नहीं पीना चाहिए तो फिर भगवान ने उसे बनाया ही क्यों ? भगवान ने बीड़ी बनाई है तो पीने के लिए ही बनाई है ।'

वास्तव में भगवान ने बीड़ी नहीं बनाई, तम्बाकू बनाया है और वह भी दवाइयों में काम आता है । बीड़ी तो मनुष्य ने बनाई है । यदि भगवान ने जो कुछ बनाया है उन सबको तुम उपयोग में लेना चाहते

हो तो लो, मेरी मनाही नहीं है परंतु भगवान ने तो धतूरा भी बनाया है । तुम उसकी सब्जी क्यों नहीं बनाते ? भगवान ने काँटे भी बनाये हैं । तुम उन पर क्यों नहीं चलते ? जैसे छुरी-चाकू सब्जी काटने के लिए हैं वैसे ही तम्बाकू दवाइयों के लिए है । जैसे चाकू-छुरी पेट में भोंकने के लिए नहीं है ऐसे ही तम्बाकू खाने के लिए नहीं है । जब तुम आक-धतूरे को नहीं खाते, उसमें अपनी बुद्धि का उपयोग करते हो तो फिर यह जानते हुए भी कि बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब आदि हानिकारक हैं तो क्यों लेते हो ?

एक शराबी था । शराब की प्यालियाँ पीकर, अपनी गाड़ी चलाते हुए घर की ओर जा रहा था । रास्ते में उसकी गाड़ी के टायर में पंक्चर हो गया । वह गाड़ी खड़ी करके पंक्चरवाले पहिए के नट-बोल्ट खोलकर पीछे रखता गया । पीछे एक नाली थी । उसके सारे नट-बोल्ट पानी में बह गये । जब उसने दूसरा पहिया निकाला और लगाने गया तो सारे नट-बोल्ट नाली में लुढ़क चुके थे । वह रोने लगा : 'अब मैं घर कैसे पहुँचूँगा ?'

बगल में पागलों का एक अस्पताल था । एक पागल आरामकुर्सी पर बैठकर शराबी की सब हरकतें देख रहा था । शराबी बड़बड़ा रहा था कि 'अब घर कैसे जाऊँ ?' वह कोसता भी जा रहा था कि 'यहाँ नाली किसने बनाई ? म्युनिसिपालिटी (नगर-निगम) के लोग कैसे हैं ।' आदि-आदि । इतने में वह पागल आया और बोला :

''रोते क्यों हो यार ! बाकी के तीन पहियों में से एक-एक नट निकालकर चौथे पहिए में लगा दो और घर पहुँच जाओ ।''

शराबी ने पूछा : ''आप रहते कहाँ हो ?''

उसने जवाब दिया : ''मैं पागलों की अस्पताल में रहता हूँ और अपना इलाज करवाने आया हूँ ।''

शराबी : ''क्या आप सचमुच इलाज करवाने आये हो ?''

पागल : ''हाँ, मैं इलाज करवाने के लिए ही आया हूँ। मुझे थोड़ी दिमाग की तकलीफ थी इसीलिए आया हूँ । मैं एक पागल हूँ ।''

शराबी : ''आप पागल हो फिर भी मुझे अक्कल दे रहे हो ?''

पागल : ''मैं पागल हूँ पर तुम्हारे जैसा शराबी नहीं हूँ ।''

शराबी मनुष्य तो पागल से भी ज्यादा पागल होता है । पागल व्यक्ति तो केवल अपना थोड़ा नुकसान करता है जबकि शराबी व्यक्ति के शरीर में अल्कोहल फैल जाता है । अल्कोहल एक प्रकार का जहर है । हम जैसा खाते-पीते हैं उसका असर हमारे शरीर पर जरूर होता है । अल्कोहल के कारण शराबी के बेटे को आँख का कैन्सर हो सकता है क्योंकि शराबी के रक्त में अल्कोहल ज्यादा होता है । उसके बेटे को नहीं तो बेटे के बेटे को, उसको भी नहीं तो बेटे के बेटे के बेटे को... इस प्रकार दसवीं पीढ़ी तक के बालक को भी आँख का कैन्सर होने की संभावना रहती है । शराबी अपनी जिंदगी तो बिगाड़ता ही है किन्तु दसवीं पीढ़ी तक को बिगाड़ देता है ।

जब शराबी दसवीं पीढ़ी तक की बरबादी कर सकता है तो राम-नाम इक्कीस पीढ़ियों को तार दे इसमें क्या आश्चर्य है ?

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा ?
रात बीती सुबह को उतर जायेगी ।
तू हरिनाम की प्यालियाँ पी ले ।
तेरी सारी जिंदगी सुधर जायेगी ॥

मनुष्य यदि किसी भी व्यसन का आदी हो जाये तो उसके स्वास्थ्य की बहुत हानि होती है । चाय तो मनुष्य के लिए बहुत ही हानिकारक है ।

खाली पेट चाय पीने से बहुत नुकसान होता है । चाय पीने से स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, दिमाग ठिकाने नहीं रहता, अजीर्ण और कब्जियत की बीमारी हो जाती है । चाय पाचक रसों में रुकावट पैदा करती है । इन्हीं सब कारणों से जो लोग चाय-कॉफी बहुत ज्यादा पीते हैं उनका शरीर पतला रहता है, गाल बैठ जाते हैं, चेहरा मलिन होता है तथा सिरदर्द की तकलीफ अधिक होती है ।

चाय के अधिक सेवन से पित्त का प्रकोप होता रहता है । बाल जल्दी झड़ने लगते हैं अथवा सफेद

हो जाते हैं । वात का प्रकोप और लकवे की संभावना बढ़ जाती है । शरीर कमजोर हो जाता है, नसें कमजोर होने से पक्षाघात भी हो जाता है ।

जो स्वयं चाय पीता है उसको तो हानि होती ही है किन्तु यदि माता-पिता चाय पीते हैं तो बालक कमजोर पैदा होते हैं । जैसा बीज होता है वैसा ही वृक्ष होता है । चाय तो पीनेवाले पीते हैं किन्तु भुगतना उनके बच्चों को भी पड़ता है । शराब तो पीनेवाले पीते हैं किन्तु भुगतते उनके बेटे भी हैं ।

व्यसन तो मानव जाति के घोर शत्रु हैं । व्यसनी स्वयं का तो शत्रु है ही, किन्तु अपने मित्रों का भी शत्रु है । कबीरजी ने कहा है :

कबीरा कुत्ते की दोस्ती, दो बाजू जंजाल ।
रीझे तो मुँह चाटे, खीझे तो पैर काटे ॥

कुत्ता यदि बहुत प्रसन्न हो जाये तो मुँह चाटने लगता है और नाराज हो जाये तो काटने लगता है ।

जापान के किसी राजकीय पुरुष ने कहा था कि : 'चाय और कॉफी जैसे नशीले पदार्थ अपने देश में आने लगे हैं तो अब मुझे डर लगने लगा है कि चीन और भारत जैसी कंगाल स्थिति कहीं अपने देश की भी न हो जाये क्योंकि यदि अपने देश के युवक इन नशीली वस्तुओं का इस्तेमाल करने लगेंगे तो उनके जीवन में क्या बरकत रहेगी ? उनकी संतानें कैसी होंगी ?'

बीड़ी पीनेवाले लड़के अपनी मानसिक शक्ति को नष्ट कर बैठते हैं । इतना ही नहीं, अपने जोश, बल और दृढ़ता का भी नाश कर बैठते हैं । अक्लवान् बुद्धिमान मनुष्य तो वह है जो गीता के ज्ञान का अमृतपान करके, जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनंद की अनुभूति करने के लिये अपने जीवन में प्रयास करता है । वे मनुष्य, वे बालक-बालिकाएँ सचमुच में भाग्यशाली हैं जिनको गीता के ज्ञान में, उपनिषदों के ज्ञान में, संतों के सत्संग में, रामायण में, भागवत में श्रद्धा है, मंत्र में दृढ़ता है । वे सचमुच ही बड़े भाग्यशाली हैं जो व्यसनी लोगों के संपर्क से बचते हैं, उनकी नकल करने से बचते हैं और ध्रुव, प्रहलाद, नानक, कबीर, मीरा, तुकाराम, जनक, शुकदेव आदि महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा पाकर अपने जीवन में उनके आचरणों को उतारने का प्रयास करते हैं । वे सचमुच महान् हैं जो इन संतों के जीवन को निहारकर अपने जीवन को भी योग एवं आत्मविद्या से संपन्न करते हैं । ऐहिक विद्या, यौगिक विद्या (अर्थात् भक्तियोग, ध्यानयोग, नादानुसंधान योग आदि) एवं आत्मविद्या से संपन्न होकर जो अपने जीवन को उन्नत करता है, वही मनुष्य वास्तव में इस पृथ्वी पर आने का फल प्राप्त करता है ।

उसीका जीवन सफल है जिसके जीवन में दृढ़ता है । उसीका जीवन सफल है जिसके जीवन में सत्संग के लिए स्नेह है । उसीका मनुष्य जन्म सफल है जिसके जीवन में सादगी, सच्चाई और पवित्रता है, जीवन व्यसनों से मुक्त है । उसे अनुकूलताएँ बाँध नहीं सकतीं और प्रतिकूलताएँ डिगा नहीं सकतीं ।

(पृष्ठ १५ का शेष)

बताते हुए गीता में कहते हैं :

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

'यह स्थिर न रहनेवाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसार में विचरता है उस-उस विषय से रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मा में निरुद्ध करो ।' (गीता : ६.२६)

ध्यान-भजन के समय यह मन जहाँ कहीं भी जाये, वहाँ-वहाँ से हटाकर इसको एक ही स्थान पर लगाओ । जिसने मन को जीत लिया, उसने सारे जग को जीत लिया । जिसका मन एकाग्र है उसका शत्रु क्या बिगाड़ सकता है ? उसके आगे स्वर्ग का सुख क्या होता है ? पृथ्वी भर के राज्य का सुख क्या होता है ? जितने अंश में तुम्हारे मन की एकाग्रता होगी उतने अंश में तुम संसार में, स्वर्ग में, अतल में, वितल में, तलातल में, रसातल में और पाताल में सफल हो जाओगे ।

तुम तो सफल हो जाओगे, साथ ही तुम्हारे सम्पर्क में आनेवाले लोगों को भी शांति और आनंद की प्राप्ति होने लगेगी । तुम इतने महान् बन जाओगे ।

पालक

हरे पत्तों की तरकारियों में पालक के पत्तों की तरकारी अधिक पथ्य और उपयोगी है । पालक के पत्तों में पर्याप्त औषधीय गुण विद्यमान हैं । पालक में लौह और तांबे के अंश होने के कारण यह पांडुरोग के लिये पथ्य है । यह रक्त को शुद्ध व हड्डियों को मजबूत बनाती है ।

पाचन तंत्र के लिये यह अत्यंत उपयोगी है । इसके नियमित सेवन से उदर-विकारों व कब्ज से मुक्ति मिलती है व भूख भी खुलकर लगती है । इसके नियमित सेवन से गर्भवती महिला को प्रसव के समय अधिक परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता ।

यह वायु करनेवाली, शीतल व मधुमेह के रोग में भी अत्यंत गुणकारी है । इसके बीज यकृतरोग, पीलिया व पित्तप्रकोप को मिटाते हैं । कफ और श्वास संबंधी रोगों में भी ये हितकारी हैं ।

खांसी और गले की जलन तथा फेफड़ों की सूजन में पालक के रस के गराटे करने से लाभ होता है । बाल अधिक झड़ने तथा बालों में रुसी की शिकायत होने पर पालक के उबले रस में नीबू का रस समानमात्रा में मिलाकर सिर धोने से इस समस्या से छुटकारा मिलेगा । दाँतों में पायरिया की बीमारी होने पर कुछ रोज प्रात:काल आधा गिलास पालक का रस खाली पेट लें । इसके अलावा कच्चा पालक चबा-चबाकर खायें । पालक के रस में गाजर का रस मिलाकर पीने से मसूड़ों से खून आना बंद हो जाता है । पालक के पत्ते नीम की पत्तियों के साथ पीसकर बनाया हुआ लेप मवाद भरे फोड़ों पर लगाने से खराब रक्त बाहर निकल जाएगा और फोड़ा ठीक हो जाएगा ।

जले हुए अंग पर पालक के पीसे हुए पत्तों का तत्काल लेप करने से जलन शांत होगी व फफोले नहीं पड़ेंगे । किसी दवा का प्रतिकूल असर (साइड इफेक्ट) होने या कोई विषैली वस्तु खा लेने पर पानी में पालक उबालकर उस पानी में अदरक का थोड़ा-सा रस मिलाकर प्रभावित व्यक्ति को देने से तत्काल राहत मिलती है । रक्ताल्पता की बीमारी में पालक की सब्जी का नियमित सेवन व आधा गिलास पालक के रस में दो चम्मच शहद मिलाकर ५० दिन पियें । इससे काफी फायदा होगा ।

पालक के नियमित सेवन से समस्त विकार दूर होकर चेहरे पर लालिमा, शरीर में स्फूर्ति, उत्साह, शक्ति-संचार व रक्त-भ्रमण तेजी से होता है । इसके निरन्तर सेवन से चेहरे के रंग में निखार आ जाता है । नेत्रज्योति बढ़ती है ।

पालक पीलिया, उन्माद, हिस्टीरिया, प्यास, जलन, पित्तज्वर में भी लाभ करता है ।

विशेष : पालक की सब्जी वायु करती है अत: वर्षाकाल में इसका सेवन न करें । इसके पत्तों में सूक्ष्म जन्तु भी होते हैं अत: गर्म पानी से धोने के बाद ही इसका उपयोग करें ।

अच्छी सेहत के लिये हल्का गर्म पानी

हल्का गुनगुना पानी पीने से शरीर पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है, इससे खून का दौरा भी बढ़ता है और रोग प्रतिरोधी शक्ति भी बढ़ती है जिससे शरीर से विषैले पदार्थ मूत्र के द्वारा बाहर निकल जाते हैं ।

तरीका : पानी को हल्का गर्म करके थर्मस में भर लें । उसमें से थोड़ा-थोड़ा सारा दिन पीते रहें ।

बड़ (बरगद)

बवासीर, वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन, प्रमेह,

(शेष पृष्ठ १९ पर)

संस्था समाचार

लखनऊ : पूज्य बापू के ५६ वें जन्म-महोत्सव पर लखनऊ के बेगम हजरत महल पार्क में दिनांक : २४ से २८ अप्रैल '९७ तक दिव्य सत्संग समारोह का आयोजन हुआ, जिसमें दूर-सुदूर क्षेत्रों के हजारों-हजारों श्रद्धालुओं ने लखनऊ में प्रथम बार पूज्य बापूजी के आगमन पर उनके मुखारविन्द से प्रस्फुरित अमृतवाणी का पान कर धन्यता का अनुभव किया ।

प्रथम दिन सत्संग पांडाल में पूज्य बापूजी के पधारने पर उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री रोमेश भण्डारी ने माल्यार्पण कर पूज्य बापूजी का स्वागत किया व उन्हें भक्ति, ज्ञान-विज्ञान एवं धर्म का ज्ञाता बताया। सत्संग स्थल की तरफ प्रथम दिवस से ही श्रद्धालुओं का भारी तादाद में आना शुरू हो गया था ।

दिनांक : २६ अप्रैल को द्वितीय सत्र के अवसर पर उत्तर प्रदेश के कैबिनेट मंत्री श्री लालजी टंडन, विधान परिषद के सभापति श्री नित्यानंद स्वामी, पूर्व मुख्यमंत्री श्रीपति मिश्र एवं मेयर डॉ. एस. सी. राय व अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने माल्यार्पण कर पूज्य बापू का स्वागत किया एवं सत्संग प्रवचन का लाभ लिया ।

दिनांक : २७ अप्रैल को लखनऊ के सांसद व पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने माल्यार्पण करके पूज्य बापूजी का भावभीना स्वागत किया व पूरे ढाई घंटे तक एकाग्रचित्त होकर पूज्यश्री के सत्संगामृत का पान किया । वे पूज्यश्री की चुटीली टिप्पणियों व रोचक प्रसंगों को भावविभोर होकर सुनते रहे व बीच-बीच में मुस्कुराते रहे । यहाँ सत्संग-मंडप में उस समय अनोखा दृश्य उपस्थित हो गया जब वाजपेयीजी 'हरि ॐ हरि...' के भक्तिमय संगीत की लय पर पूज्यश्री के साथ थिरकने लगे और फिर तो करीब पाँच मिनट तक वहाँ ऐसा समां बँधा कि हजारों-हजारों श्रद्धालुगण भक्तिरस में सराबोर हो गये ।

वाजपेयीजी ने सत्संग-पांडाल में उपस्थित भक्त समुदाय को संबोधित करते हुए कहा :

''देशभर की परिक्रमा करते हुए जन-जन के मन में अच्छे संस्कार जगाना एक ऐसा परम राष्ट्रीय कर्त्तव्य है जिसने आज तक हमारे देश को जीवित रखा है और जिसके बल पर हम उज्ज्वल भविष्य का सपना देख रहे हैं । उस सपने को साकार करने की शक्ति और भक्ति एकत्र कर रहे हैं पूज्य बापूजी ।

हमारी जो प्राचीन धरोहर थी, जिसे हम करीब भूलने का पाप कर बैठे थे उस धरोहर को पूज्य बापूजी फिर से हमारी आँखों के आगे (ऐसी आँखों के आगे जिनमें उन्होंने ज्ञान का अंजन लगाया है) रख रहे हैं । बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी पूज्य बापूजी के पास आने की, लेकिन जैसा कहा गया है कि 'दाने दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम ।' ऐसे ही संतों के दर्शन के लिए भी कोई विशेष मुहूर्त होता है, तभी संतों के दर्शन हो पाते हैं... और आज मेरे लिए वह मुहूर्त आ गया है । पूज्य बापूजी का प्रवचन सुनकर बड़ा बल मिला है । थोड़ी-बहुत निराशा जो अभी हाल में लोकसभा के अधिवेशन के कारण पैदा हो गयी थी, वह आज पूज्य बापूजी से मिलकर दूर हो गई, खत्म हो गई ।''

लखनऊ के लोकसभा के सदस्य के नाते उन्होंने कहा : **''मैं अपनी व आप सभी की तरफ से पूज्य बापूजी का अभिनंदन करने आया हूँ । मैं पू. बापूजी के चरणों में बड़ी विनम्रता के साथ निवेदन करना चाहता हूँ कि हमें उनका आशीर्वाद मिलता रहे और उनके आशीर्वाद से प्रेरणा लेकर, बल प्राप्त करके हम कर्त्तव्य के पथ पर निरंतर चलते हुए परम वैभव के लक्ष्य को प्राप्त करें - यही प्रभु से प्रार्थना है ।''**

दिनांक : २८ अप्रैल को पूज्यश्री का ५६ वाँ जन्म-महोत्सव आरती, कीर्तन व दीप प्रज्ज्वलन कर खूब धूमधाम के साथ मनाया गया । इस अवसर पर ५६ दीप प्रज्ज्वलित किये गये । इस शुभ अवसर पर ब्राह्मणों ने स्वस्तिगान कर पूज्य बापू के दीर्घायु जीवन की कामना की, उसके पश्चात् श्रद्धालुओं में प्रसाद वितरण

किया गया। इसी शाम को उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री कल्याणसिंह ने माल्यार्पण करके पूज्य बापूजी का स्वागत किया एवं उनकी अमृतवाणी का रसपान किया।

पाँच दिन तक चले इस भक्ति ज्ञान सत्संग सरिता में विभिन्न प्रदेशों सहित लखनऊ के लाखों लोगों ने भावविभोर होकर अवगाहन किया।

दिल्ली : दिनांक : २ मई '९७ को ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्य बापूजी ने दीप प्रज्ज्वलित कर श्री आद्या कात्यायनी शक्तिपीठ, छत्तरपुर, नई दिल्ली में अखिल भारतीय सनातन धर्म प्रतिनिधि सम्मेलन द्वारा आयोजित विराट सनातन धर्म महासम्मेलन एवं तीन दिवसीय भक्ति साधना शिविर का उद्घाटन किया। इस अवसर पर ज्योतिपीठ के निवृत्त शंकराचार्य श्री स्वामी सत्यमित्रानंदगिरिजी महाराज, प्रज्ञापीठाधीश्वर स्वामी प्रज्ञानंदजी महाराज, प्रसिद्ध संत कल्याणदेव महाराज, स्वामी शारदानंद महाराज, डॉ. मंडन मिश्र व पूर्व केन्द्रीय मंत्री डॉ. कर्णसिंह आदि संत और विद्वान व हजारों श्रद्धालुगण उपस्थित थे।

इस अवसर पर पूज्य बापूजी ने कहा : ''**रोम, मिश्र और चीन की संस्कृति यद्यपि पुरातन है लेकिन भारत की संस्कृति भी कालावधि से मुक्त, सनातन, अनंत एवं व्यापक है।**'' उन्होंने कहा :

''**भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अन्य संस्कृतियों की तरह विशिष्ट स्थानों, प्रतीकों एवं व्यक्तियों का प्रतीक बनकर नहीं रहती। वह साधारण नागरिकों के साथ हर क्षण, हर गली-मुहल्ले में रहती है। भारतीय संस्कृति को यह शक्ति सनातन धर्म से मिली है।**''

रोहतक : दिनांक : ३० अप्रैल से ४ मई '९७ तक रोहतक (हरियाणा) में सत्संग समारोह का आयोजन हुआ, जिसमें प्रथम चार दिन आश्रम के साधक श्री सुरेश ब्रह्मचारीजी की अमृतवाणी का व दिनांक : ४ मई को पू. बापूजी की अमृतवाणी का रसपान हजारों-हजारों लोगों ने किया।

पंचेड़ : आश्रम पर पूज्यश्री के सान्निध्य में २२ मई से चार दिवसीय वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर हजारों हजारों दिलों में ईश्वरीय आनंद की अनुभूति से संपदावान बन गया। इस शिविर के दौरान् एक अत्यन्त सादे समारोह में बुद्ध पूर्णिमा के दिन अपरान्ह पूज्यश्री के सुपुत्र बालयोगी पूज्य श्री नारायण स्वामी एवं सुपुत्री सुश्री भारतीबहन का परिणय बंधन पूज्यश्री के सान्निध्य में संपन्न हुआ। विवाह के अवसर पर उपस्थित हजारों श्रद्धालुओं को विवाह का सनातन धर्म में वास्तविक अर्थ समझाते हुए पू. बापू ने कहा : ''**स्त्री-पुरुष के कामनापूर्तिरूपी श्रम को मर्यादित करने के लिये पवित्र भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम की व्यवस्था है। अन्य मजहबों की भाँति हमारे यहाँ स्त्री को भोग्या नहीं, वरन् मुक्ति की अधिकारी माना गया है, पति की अर्धांगिनी की संज्ञा से विभूषित किया गया है। जीवन को शाद-आबाद बनाने के लिये गृहस्थाश्रम एक मंदिर है। हमारा इतिहास साक्षी है कि भारत की तेजस्वी कन्याएँ भगवान की माताएँ बनी हैं।**''

प्रदेश के प्रमुख समाचार-पत्रों ने सादे विवाह समारोह को समाज में आदर्श विवाह के रूप में परिभाषित कर, इसे नवीन सामाजिक क्रान्ति के रूप में परिभाषित किया।

देश के कोने-कोने से ही नहीं, वरन् विदेशों से भी प्रकृति के सुरम्य एकान्त वातावरण में स्थित आश्रम में पूनमव्रतधारियों के साथ हजारों साधक-साधिकाओं ने 'सत्संग क्यों, ध्यान किसका और योग-साधना कैसे करें ?' इस गंभीर विषय को पूज्यश्री की सरल सहजवाणी में सहजता से सीखा और जीवन को ओजस्वी तेजस्वी बनाने की कुँजियाँ पायीं। प्रतिदिन सत्संग समारोह में उमड़ी मालवा की जनता को पूज्यश्री ने अपनी पीयूषवाणी में कहा : ''**जिसके जीवन में सत्संग और संतपुरुषों के लिये आदर है वे सदैव आनंद, माधुर्य, प्रसन्नता एवं सुखी-सम्मानित जीवन का लाभ लेते हैं। सत्संग का जितना-जितना आदर होगा, उतना-उतना जीवन का विकास होगा।**''

शिविर की पूर्णाहुति के दिन पंचेड़ आश्रम के साथ-साथ सैलाना में विशाल आदिवासी भण्डारे का आयोजन संपन्न हुआ, जहाँ दरिद्रनारायणों की सेवा न केवल भगवत्प्रसाद से वरन् बर्तन, वस्त्र, अनाज इत्यादि

वितरीत करके की गयी ।

इन्दौर : बालयोगी श्री नारायण स्वामी के सान्निध्य में साढ़े चार हजार विद्यार्थियों ने दिनांक : २६ से ३० अप्रैल तक ध्यान योग शिविर का लाभ लिया । शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता, बुद्धि में समता, माता-पिता और देश के लिएं प्रेम, सद्‌गुरुओं का प्रसाद पाने की कला, चरित्र-निर्माण के साथ साथ कई यौगिक प्रयोग एवं यादशक्ति बढ़ाने की कुँजियाँ बताईं । श्री नारायण स्वामी ने कहा :

''धन्य हैं वे बच्चे और उनके अभिभावक ! जैसे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को ऐहिक विद्या के साथ आध्यात्मिक विद्या मिली थी वही आध्यात्मिक विद्या के साथ लौकिक विकास पाकर प्रगति के रास्ते चलेंगे-चमकेंगे और मोक्ष भी पाएँगे । दोनों हाथ में लड्डू । इन शिविरार्थी बच्चों का किन शब्दों में धन्यवाद किया जाय ! किन शब्दों में इनकी प्रशंसा की जाय !

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः ।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ॥

इस उम्र में छात्रों को जो ज्ञान मिलता है उससे उनके समग्र जीवन का विकास होता है । इसलिए ऐसे शिविरों में विद्यार्थियों को ध्यान, योग और ज्ञान के द्वारा तेजस्वी-ओजस्वी बनाया जाता है । विद्यार्थी भारत की शान है । संयम, नियम, जप, तप और सेवा का अवलम्बन इनके जीवन की उन्नति का परम साधन है ।''

आपने छात्रों को विभिन्न दृष्टान्तों के जरिए आत्मबल, निर्भयता, तेजस्वीता, आरोग्यता का महत्त्व समझाते हुए ध्यानयोग की कई कुँजियाँ सिखायीं । आपने छात्रों को कहा : **''हमारा व्यवहार सुसंस्कृत होना चाहिए क्योंकि हमारा देश विश्ववंदनीय गुरुओं की सुसंस्कृत परंपराओं से ही महान हुआ है ।**

हमारी संस्कृति दिव्य है । प्राणपन से इसकी सुरक्षा करना हम सबका दायित्व है । हम अपनी संस्कृति के उपासक बनें इसीसे आदर्श समाज एवं राष्ट्र का निर्माण होगा । जिनके जीवन में सद्‌गुरुओं का सान्निध्य होता है वे सदैव उन्नत रहते हैं ।''

क्षेत्रीय समाचार-पत्रों ने इस शिविर को एक नवीन राष्ट्रनिर्माण की संज्ञा देते हुए एक अभूतपूर्व अनुष्ठान बताया ।

नकली धूप, अगरबत्ती, नोटबुक्स एवं नकली कैसेटों से सावधान

नकली कैसेटों से सावधान रहने के लिए पूर्व में आगाह किया गया था । पता चला है कि कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने कैसेटों के साथ साथ अब धूप, अगरबत्ती (विशेषकर काशी धूप), आश्रम से प्रकाशित सस्ते दामों की नोटबुक्स इत्यादि सामग्री को घटिया क्वालिटी, कम पृष्ठ, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक घटिया अगरबत्ती इत्यादि बनाकर बेचना चालू कर दिया है और इस प्रकार श्रद्धालु जनता को ठगा जा रहा है ।

अतः आप सभी को सूचित किया जाता है कि आप नकली वस्तुओं के चक्कर में न आकर विभिन्न आश्रमों अथवा श्री योग वेदान्त सेवा समितियों से ही ये चीजें प्राप्त करें । सभी समितियों एवं साधकों का दायित्व है कि अगर उन्हें कोई भी ऐसी जानकारी प्राप्त हो तो तुरन्त अमदावाद आश्रम, स्थानीय आश्रम अथवा स्थानीय समिति में सूचित करें तथा अपने स्थानीय साधकों को उचित सावधान करें ।

आध्यात्मिक ऊँचाइयों के शिखर पर आसीन

'ऋषिप्रसाद' अपने

आठवें जन्मदिवस

पर लाखों मराठी भाषी साधकों

के आग्रह का आदर करते हुए

५५ वें अंक से गुरुपुर्णिमा पर

मराठी भाषा में

प्रकाशित हो रहा है।

जानकारी व सदस्यता के लिए

स्थानीय सेवादारी या कार्यालय का

सम्पर्क करें।

REGISTERED WITH R.N.I. UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT AHMEDABAD PSO LICENCE NO.